प्रकाशक एवं विक्रेता

साहित्य-सेवक-कार्यालय,

काशी

मुद्रक

बजरंगबली 'विशारद'

श्रीसीताराम प्रेस, काशी।

टानिया

कहानियाँ

तान्या

या

[छब्बीस मनुष्य और एक लड़की]

हम छब्बीस थे। ये छब्बीसों जीती-जागती मशीनें एक आर्द्र मुँहहरे में रहती थीं। हम सवेरे से शाम तक आँटा पीसते और उनकी लोइयाँ बनाया करते। मुँहहरे की खिड़की के सामने एक ईंटों से घिरा, हरा-भरा और नमी से मलिन स्थल था। खिड़कियों में बाहर की ओर से लोहे का बंद जँगला लगा था। उन के शीशों से छनकर सूर्य की किरणें भीतर नहीं आ सकती थीं, वे आँटे के कणों से भर गई थीं।

मालिक ने खिड़कियों में जँगले इसलिये जड़ दिए थे, जिससे हम उसकी रोटियों के टुकड़े उधर से आनेवाले किसी भिखमंगे को न दे सकें अथवा काम न करनेवाले अपने किसी भूखे साथी को न दे डालें। मालिक हमें पाजी कहता था। वह दिन में हमें मांस के बदले अधपकी आँतें खाने को देता। उस पत्थर के बने हुए पिंजड़े में सूर्य की किरणें पहुँच ही नहीं पाती थीं। जिस कमरे में हम लोग रखे गए थे उसकी छत नीची और कज्जल की भाँति काली थी। उन मोटी, गंदी और नमी से भरी हुई दीवालों में हमारा जीवन सूना था, घुला जा रहा था।

हम लोग सवेरे पाँच बजे उठा करते। हमारी नींद भी पूरी न
हो पाती, हम अलसाए हुए रहते, छः बजने के पहले ही उदास
और उत्साहहीन मन से मेज पर बैठ जाया करते और हमारे
साथी रात में जो आँटा तैयार कर रखते उसे गुलियाने लगते।
सवेरे दस बजे से रात दस बजे तक, दिनभर, हम लोग हाथों से
आँटे को गुलियाना और माड़ा करते। भंडारी पिसान के लसदार
टुकड़ों को कढ़ाई से निकालकर गर्माए हुए ईंटों पर रखता और
भट्ठे में बड़े जोर से अपनी खुर्चनी द्वारा उन्हें कल्हारने लगता।

सुबह से शाम तक भट्ठे में लक्कड़ जला करता। आग की
लाल-लाल लपटें रसोई-घर की दीवालों पर प्रज्वलित होकर लह-
राया करतीं, मानों हम लोगों के ऊपर हँस रही हों। वह भीषण
भट्ठा कल्पित कहानियों में वर्णित दैत्य के टेढ़े-मेढ़े कपाल की
तरह बना था, मानों धरती चीरकर निकल आया हो। वह लह-
राती हुई आग के रूप में डाढ़ों को फैलाकर हम लोगों पर
गर्मागर्म श्वास छोड़ा करता। भट्ठे में हवा जाने के लिये जो
काले-काले छेद बने थे, मानों उन्हीं के द्वारा निरंतर हमारे इस
निःसीम काम की देख-भाल किया करता हो। भट्ठे में जो दो
बड़े-बड़े छेद थे, मानों वे ही उसकी दोनों आँखें थीं। दैत्य की
आँखों की ही भाँति वे भी निर्दय और भावशून्य थीं। वे सदा हम
लोगों को अपनी काली नजरों से निरखा करतीं, मानों हमारे
ऐसे अनंतकालीन गुलामों को सामने देखते-देखते थक गई हों।
वे ऐसे गुलामों में मानवता की कुछ भी कल्पना नहीं कर सकती

थीं, इसीसे हमसे घृणा करतीं और यह उनकी मौन घृणा होती।

आँगन से हमलोग आँटा और गुँधा हुआ पिसान ढो लाते। गर्मी में, बरसात की उमस में, दिनभर, रातभर, हम लोग आँटे की लोइयाँ बनाया करते। वे हमारे ही पसीने से सनी होती थीं। हम लोगों को अपने काम से सख्त घृणा हो गई थी। जिन चीजों के बनाने में हमारा हाथ लगता उन्हें हम खाते भी न थे। उन बाटियों की अपेक्षा जली हुई काली-काली लिट्टियों को ही अच्छा समझते थे। नौ-नौ आदमी एक लंबे टेबुल पर आमने-सामने बैठ जाते, हमारे हाथ और उँगलियाँ आप ही काम करने लग जातीं। घंटों का अंत ही न था। धीरे-धीरे हम लोग इस अरुचिकर काम में अभ्यस्त हो गए। इस अरुचि की ओर अब हम लोगों का ध्यान ही नहीं जाता था।

हम सब एक-दूसरे से बहुत ही हिलमिल गए थे। हममें से एक-एक व्यक्ति अपने साथी के चेहरे की सिकुड़न तक पहचानता था। हम लोगों में इतनी बातचीत हुआ करती थी कि थोड़े ही दिनों में बात करने के लिये कुछ रहो न गया। इसीसे अब हम लोग अधिकतर मौन ही रहा करते। फिर भी एक दूसरे को बात करने के लिये कोंचा करते। किसी को तंग करने के लिये कोई बात बराबर नहीं मिला करती थी। हाँ, अपने परिचित साथी की कोई-न-कोई बात हम लोग ढूँढ़ लेते थे। हमारे पास किसीका दोष ढूँढ़ निकालने का समय भी तो नहीं था! भला, हमारे ऐसे गरीब आदमी उस दर्जे तक कैसे पहुँच सकते थे! हम लोग तो आप ही

तेज होती जाती और ऊपर की ओर उठती। हम लोगों को जान पड़ता, मानों उस पत्थर के कैदखाने की सिहली और गंदी दीवालें खुली जा रही हैं, फटी पड़ रही हैं। अंत में, हम छत्तीसो गाने लगते। हमारे ऊँचे और समवेत-स्वर से सारा मुँहहरा गूँज उठता। तान बाहर तक पहुँच जाती, बहुत दूर तक सुनाई पड़ती। दुःख के उल्लास से भरी हुई वह ध्वनि दीवालों से टकरा जाती, हमारे कोमल हृदयों को हिला देती, वेदना को उछाल देती, सूखे हुए घावों को चीर डालती और सोई हुई अभिलाषाओं को फिर से जागरित कर देती।

गानेवाले दुःख के बोझ से गहरी साँसें भरने लगते। सहसा एक व्यक्ति चुप हो जाता और दूसरों का गान सुनने लगता। इसके बाद एक बार वह फिर समवेत-स्वर में अपना स्वर मिलाता। दूसरा व्यक्ति भर्राई हुई आवाज में 'आह' कर उठता और आँखें बंद कर लेता। उसके समक्ष वह गहरी और खिंची हुई ध्वनि मानों दंड के रूप में खड़ी हो जाती। उसे कुछ दूर, एक चमचमाता हुआ, विशाल दंड दिखाई पड़ने लगता। ऐसा ज्ञात होता, मानों वह उसीकी ओर बढ़ता चला आ रहा है।

अग्नि की लपट फिर उस विशाल भट्ठे में लहराती दिखाई पड़ती। भंडारी फिर खुर्चनी चलाने लगता। कड़ाही में पानी फिर खौलता दिखाई देता। आग की लपट फिर दीवाल पर नाच उठती। उसका मौन हास्य फिर सामने आ जाता। दूसरे लोगों के विचार में हम अपनी मौन-वेदना गा डाला करते। उस असह्य भार ने—

उस गुलामी के बोझ से—जीते-जी हमें प्रकृति द्वारा प्राप्त सूर्य की किरणों से भी वंचित कर रखा था।

इसी प्रकार हम वहाँ आठों दिन काम करते थे। हम छब्बीसों जन [illegible] पत्थर के विशाल खँडहर में इसी प्रकार रहा करते। हममें से प्रत्येक दुःखी था। जान पड़ता कि उस मकान के तीनों खंडों का बोझ हमारे ही कंधों पर आ पड़ा है।

पर हमारे गाना गाने के अतिरिक्त और भी एक वस्तु थी, जो जीवन में रमणीयता का संचार किया करती। हम किसी को प्यार करते थे। वही हम लोगों की चमचमाती धूप थी।

हमारे मकान के दूसरे खंड में जरी के काम की एक दुकान खोली गई थी। वहाँ जरी का काम करनेवाली बहुत-सी लड़कियाँ थीं। उनमें सोलह वर्ष की टानिया नाम की एक परिचारिका भी थी। प्रतिदिन प्रातःकाल शीशे की खिड़की से एक छोटा-सा गुलाबी चेहरा झाँका करता। उसकी काली-काली आँखें हँसती रहतीं। वह अपने कोमल-कंठ की मधुर-ध्वनि से हमें पुकारती—"बंदियो ! क्यों, बाटियाँ दोगे ?"

वह कंठ-ध्वनि इतनी परिचित हो गई थी कि उसके निकलते ही हम लोग अपनी गर्दन उठाकर उल्लसित हृदय से उस ओर निहारने लगते। उसका शुद्ध बाल-मुख-मंडल मीठी मुसकान से खिल उठता। खिड़की के शीशे में सटी हुई उसकी छोटी-सी नासिका और अधखुले अधरों के बीच से चमकती हुई उज्ज्वल दंत-राजि, हमें प्रतिदिन आह्लादित किया करती थी। हम द्वार

खोलने के लिये एक दूसरे पर गिरते-पड़ते दौड़ जाते। यह भीतर जाती, उसका मुख प्रसन्न और देदीप्यमान् रहता, यह सिर के साये को समेट कर एक ओर कर लेती, अधरों से मुसकान फूट पड़ती। उसके घने, लंबे और मयूर-पिच्छ से काले केश कंधों पर बिखरे हुए वक्षस्थल के नीचे तक लटका करते। हम अभागे, कुरूप और गंदे लोग उसे निहारने लगते। द्वार की देहली सतह से चार सीढ़ी ऊँची थी। हम गर्दनें पीठ की ओर फेरे हुए उसे निरखते, उसकी मंगल-कामना करते और बात करने के लिये चुन-चुनकर जो विचित्र एवं विलक्षण शब्द ढूँढ़ रखे होते, उन्हींमें उससे बातचीत करते। जब हम उससे बोलते तो हमारी कंठ-ध्वनि कोमल हो जाती। हमारा विनोद भी साधारण ही हुआ करता। उसके निमित्त-हमारी सभी बातें कुछ और ही हुआ करतीं। भंडारी सुर्चनी से भट्ठे की बढ़िया और खूब पकी हुई लाल-लाल बाटियाँ उठाता और उन्हें भली भाँति साधकर टानिया के दमाज़ में फेंक देता।

"अच्छा, अब जाओ, नहीं तो मालिक पकड़ लेगा।"—कह-कर हम उसे बराबर सावधान करते रहते। यह खिलखिलाकर हँस पड़ती और प्रसन्नतापूर्वक कह उठती—"दीन बंदियो! जाती हूँ!" यह कहकर वह हरिणी की तरह फुदकती हुई चली जाती।

यही हमारी दिनचर्या थी। उसके चले जाने के बहुत देर बाद हम लोग आपस में प्रसन्न-मन से उसके बारे में बातचीत करने लगते। हमारी दिनचर्या सदा एक-सी थी, जो परसों थी

वही कल और जो कल थी वही आज । क्योंकि हमारे संबंध की सभी बातें, हम और वह सभी एक-से थे, जो आज थे वही कल और जो कल थे वही आज ।

मनुष्य जिस वातावरण में जीता है, यदि उसमें परिवर्तन न होता रहे तो उसका जीवन दुःखपूर्ण एवं दुर्वह हो जाता है। यदि एक परिस्थिति में रहते-रहते उसकी आत्मा मर नहीं जाती, तो ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों अरुचि से उसका जीवन और भी कष्टकर तो हो ही जाता है। प्रायः हम लोग स्त्रियों के विषय में ऐसी-ऐसी बातें किया करते कि कभी-कभी हमें अपनी ही अशिष्ट एवं निर्लज्जता-पूर्ण बातचीत वीभत्स जान पड़ने लगती। जिन स्त्रियों को हम जानते थे, वे थीं भी ऐसी ही। परंतु टानिया के विषय में हमारे मुख से एक भी कुत्सित शब्द नहीं निकलता था। हम में से किसीने उसे स्पर्श करने तक का कभी साहस नहीं किया था। हमारे मुख से उसने कभी असंयत विनोद तक नहीं सुन पाया था। हो सकता है, वह हमारे साथ देर तक नहीं रहती थी इसीसे हम उसे इतना मानते रहे हों। वह हमारी आँखों के सामने आकाश के तारे के समान लपलपा कर फिर अंतर्धान हो जाया करती। हो सकता है, उसके किशोर-वयस् और सौंदर्य ही के कारण हम ऐसा करते रहे हों, क्योंकि रमणीक वस्तु को देखकर नीच मनुष्यों में भी सम्मान-बुद्धि उत्पन्न हो ही जाती है। इसके अतिरिक्त भी एक बात थी। यद्यपि दंड का कार्य करते-करते हमारा जीवन पशु-तुल्य हो

गया था, हम बैल हो गए थे, फिर भी मनुष्य थे और अन्य मनुष्यों की भाँति बिना किसी वस्तु की उपासना या पूजा किए नहीं रह सकते थे। उससे उत्कृष्ट हमें और कोई नहीं जान पड़ता था। इसके अतिरिक्त उस मुईहरे में, हमारी खोज-खबर लेने-वाला भी तो कोई नहीं था, यद्यपि वहाँ थे कोड़ियों व्यक्ति! संभवत: हमारे उस बंदी-जीवन की वही मुख्य वस्तु थी। हम लोग उसे अपनी वस्तु समझते थे। उसे एक ऐसी चीज मानते थे, जिसकी सत्ता मानों हमारी बाटियों के ही गुण से हो। हम लोगों ने बारी-बारी से उसे गर्मागर्म बाटियाँ देने का कार्य अपने-अपने सिर ले लिया था। मानों यही हमारी उपास्य प्रतिमा की बलि थी। यह हमारे लिये एक विधि-विहित कार्य हो गया था। इसके द्वारा हमारा और उसका बंधन और भी कड़ा होता जाता था। टानिया को बाटियों के अतिरिक्त हम यह शिक्षा भी देते थे—'गर्म कपड़े पहना करो, ऊपर बहुत जल्दी-जल्दी मत चढ़ा करो, लकड़ी का भारी गट्ठर मत उठाया करो।' वह मुसकुराती हुई हमारा उपदेश सुना करती और हँसी में ही उसका उत्तर भी दे डालती। वह यह शिक्षा कभी ग्रहण न करती। हमें इसका कुछ भी बुरा नहीं लगता था। हमें तो उसे केवल यही दिखलाना था कि हम तुम्हारी कितनी देख-भाल करते रहते हैं।

वह बहुधा हमसे विभिन्न प्रकार की आकांक्षाएँ प्रदर्शित किया करती थी। जैसे, उसने एक बार हमसे भंडार का विशाल द्वार खोल देने और लकड़ी चीरने को कहा। हम लोगों ने बड़ी प्रसन्नता

और अभिमान के साथ उसकी यह आकांक्षा पूरी की थी। इसी प्रकार वह जो-जो चाहती, हम कर दिया करते।

पर जब हमारे साथी ने उससे फटी कमीज की मरम्मत करने को कहा, तब वह घृणापूर्ण हँसी हँसकर बोली—

"इसके बाद! ऐसी ही कोई और बात!" हमारे जिस साथी ने वैसा कहने का साहस किया था, हमने उसे बहुत बनाया। इसके बाद हमने फिर किसी और काम के लिये उससे नहीं कहा। हम लोग उसे प्यार करते थे—बस, इतने में ही सब बातें कह डाली गईं। मनुष्य अपने प्रेम का भार किसी-न-किसी पर लादने का अभिलाषी होता है। इस भार से कभी तो प्रेम-पात्र कुचला जाता है और कभी उस पर कालिख लगता है। प्रेमी दूसरे के जीवन को विष-मय इसलिये बना देता है कि वह प्रेम-पात्र को बिना जाने-समझे ही प्यार करता रहता है। हम लोग टानिया को प्यार करने के लिये विवश थे, क्योंकि प्यार करने को कोई और था ही नहीं!

कभी-कभी हममें से कोई इस प्रकार का तर्क करने लगता—"हम ऐसी दुश्चरित्रा का इतना सत्कार क्यों करते हैं? उसमें धरा ही क्या है? भला! उसके बारे में हम लोग इतना गुल-गपाड़ा क्यों मचाते रहते हैं?"

जो व्यक्ति इस प्रकार की बातें कहने का साहस करता, हम जान-बूझकर बहुत बुरी तरह से उसकी बात काट देते। हमें प्यार करने के लिये किसीकी आवश्यकता थी, वह वस्तु हमें मिली और हमने उसे प्यार किया। हम छब्बीसो जिसको प्यार

करते थे, वह हममें से प्रत्येक के लिये एक ही हो सकता था, वह धार्मिक वस्तु की भाँति अपरिवर्तनीय था। इस बारे में जो हमारे विरुद्ध बोलता था, वही हमारा शत्रु था। हम जिसे चाहते थे, हो सकता है, वह वस्तुतः रमणीय न हो, पर आप ही विचारें, हम छब्बीस थे इसलिये हम ऐसी ही वस्तु का दर्शन करना चाहते थे, जो बहुमूल्य हो और जिसे सभी लोगों ने पवित्र मान लिया हो।

हमारा प्यार घृणा से कम कष्टकर नहीं था। हो सकता है, अहम्मन्य जीवों की यह धारणा भी ठीक हो कि घृणा में प्यार की अपेक्षा बनावटीपन अधिक होता है। यदि यही बात है तो वे हमसे दूर क्यों नहीं भाग खड़े होते ?

× × × ×

हमारे बक्क विभाग के अतिरिक्त मालिक का एक और भी रसोई-घर था। यह भी इसी मकान में था। हमारे और उसके बीच में दीवाल-मात्र का अंतर था। पर उसके भंडारी हमसे दूर रखे जाते थे। वे चार थे, अपने काम को हमारे से बढ़िया समझते और इसीसे अपने को भी हम लोगों से अच्छा समझा करते थे। वे हमारे कारखाने में कभी नहीं आते थे। जब कभी आँगन में उनसे भेंट होती तो घृणा से हँस देते। हम लोग भी उनसे मिलने नहीं जाते थे। हमारे मालिक की इसके लिये मनाही थी। उसे डर था कि हम लोग बढ़िया रोटियाँ चुरा लेंगे। हम उन भंडारियों को पसंद नहीं करते थे, क्योंकि हम उनसे स्पर्धा रखते थे। उनका काम हमसे हलका था, उन्हें अधिक मेहनताना

मिलता था, वे अधिक भोजन पाते थे। उनका कमरा रोशनीदा
और बढ़िया था, वे सब साफ-सुथरे और स्वस्थ थे। इसीसे ह
लोगों से घृणा करते थे। हम सब पीले और स्याह पड़ गए थे
हममें से तीन को गर्मी हो गई थी। कुछ को चमड़े के रोग हो गा
थे। एक बेचारा तो वात-व्याधि के कारण पंगु ही हो गया था
छुट्टियों के दिन अथवा छुट्टी के समय वे लोग छींट की जाक
पहनते, चरमर करते हुए बूट डाँटते। उनमें से दो के पास हार
मोनियम भी थे। वे टहलने के लिये शहर के बागीचे में जाते। हम
लोग मैले कुचैले टुकड़े ओढ़ते, चमड़े की चट्टियाँ या मुड़े हुए
मामूली जूते पहनते। पुलिस हमें शहर के बागीचे में जाने ही न देती
थी। क्या हम लोगों को ऐसे भंडारियों का रुचना संभाव्य था ?

एक दिन हमें पता चला कि उनमें से प्रधान भंडारी ने मदिरा-
पान किया है। मालिक ने उसका माल जब्त कर लिया और
उसके ऊपर दूसरे की नियुक्ति कर दी। यह दूसरा व्यक्ति एक
सिपाही था। वह साटिन की वासकट डाटे, घड़ी लगाए और
सोने की सिकड़ी पहने था। हम लोग इस बने-ठने मनुष्य को
देखने के लिये लालायित हो उठे। इसी लालसा से हम लोग
एक के पीछे एक आँगन की ओर दौड़ पड़े।

परंतु वह आप ही हमारे कमरे में चला आया। उसने दरवाजे
पर लात मारी और धक्का देकर उसे खोल लिया। उसे खुला ही
छोड़कर वह रास्ते में खड़ा हो गया और मुसकुराने लगा। फिर हम
लोगों से बोला—

"भाइयो, नमस्कार। ईश्वर आपके कार्य में सहायक हो!"

खुले दरवाजे से होकर बर्फ की तरह ठंढी वायु आ रही थी, जिसके स्पर्श से उसके पैरों में भाफ के जलविंदु छहराने लगे। वह देहली पर खड़ा-खड़ा हमें नख से शिख तक निहार रहा था। उसकी चमकीली और मुड़ी हुई मूँछों के बीच में उज्ज्वल दाँत चमक रहे थे। उसकी वासकट सचमुच मामूली वासकटों के मेल की नहीं थी। उसमें नीले-नीले बूटे बने थे, माणिक के छोटे-छोटे और चमचमाते हुए बटनों से उसकी शोभा कुछ और ही हो रही थी। घड़ी की चेन वासकट के ऊपर लटक रही थी।

यह सिपाही बड़ा मनोहर व्यक्ति था, लंबा था, स्वस्थ था। उसके गाल गुलाबी रंग के थे, बड़ी-बड़ी और सुडौल आँखों में सौहार्द्र झलक रहा था, दृष्टि बड़ी ही आह्लादकारिणी थी। उसके सिर पर एक सफेद और देदीप्यमान टोपी थी। चोगा बहुत साफ-सुथरा था, उसमें किसी प्रकार का धब्बा नहीं था। उसके नीचे से नुकीले सिरे के बढ़िया और काले-काले बूट झाँक रहे थे।

भंडारी ने उससे नम्रतापूर्वक द्वार बंद कर देने को कहा। सिपाही ने बिना किसी उतावली के किवाड़ चिपका दिए और आकर हम लोगों से मालिक के बारे में प्रश्न करने लगा। हम लोगों ने एक साथ ही बोलना आरंभ किया और उसे समझाया कि मालिक पक्का धूर्त, दुराचारी और अत्यंत क्रूर है। वह गुलामों से पशु-तुल्य काम लेता है। कहने का मतलब यह कि

कार्याधिकारी के बारे में जितनी बातें कहनी चाहिए थीं सब कह डालीं, उनकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है। सिपाही हमारी बातें ध्यान से सुनता रहा, वह मूँछें उमेठ रहा था, हम लोगों को सहृदयता से निहार रहा था।

"क्यों, यहाँ कुमारियों का एक दल है न?"-वह सहसा पूछ बैठा

हम लोग विचित्र हँसी हँसने लगे। कुछ लोगों के चेहरे पर भावपूर्ण रेखा झलकने लगी। एक व्यक्ति ने सिपाही को बतलाया कि यहाँ नौ कुमारियाँ हैं।

"आप लोग उनमें से बहुतों को अपना सकते हैं?"—सिपाही ने पलक मारते हुए कहा।

हम लोग हँस पड़े। पर यह हँसी तेज नहीं थी, इसमें आकुलता भी मिली थी। हममें से बहुतों की इच्छा सिपाही को यह दिखा देने थी कि कुमारियों के विषय में हम भी भयावह जीव हैं। पर कोई ऐसा कर न सका! हममें से एक ने धीमे स्वर में कहा—

"हमारी मंडली ऐसी नहीं है।"

"नहीं जी, आप लोगों में केवल यही नहीं"—हमें निहारते हुए सिपाही ने दृढ़तापूर्वक कहा—"कुछ और भी कमी है। आप असल बात पर ध्यान ही नहीं देते। आपका चेहरा-मोहरा भी तो ठीक नहीं है! स्त्रियाँ भड़कीला-चेहरा पसंद करती हैं, उन्हें सुडौल शरीर सुहाता है, नख से शिख तक मनोहर वस्तुएँ अच्छी लगती हैं। इसीसे वे बल का आदर करती हैं, ऐसा भुजा पसंद करती हैं!"

सिपाही ने कमीज की बाँह समेटकर दाहिना हाथ पाकेट से बाहर निकाला और अपनी खुली हुई भुजा हमें दिखाई। वह गौर वर्ण की और पुष्ट थी, उसपर भूरे रंग के छोटे-छोटे रोएँ चमक रहे थे।

"पैर और छाती सब कुछ पुष्ट होना चाहिए, यही नहीं मनुष्य को नये-नये फैशन के कपड़े भी पहने चाहिएँ, जिससे तड़क-भड़क बढ़िया जान पड़े। हाँ, मुझे सभी स्त्रियाँ पसंद करती हैं। मैं चाहे उन्हें बुलाऊँ, चाहे दुतकारूँ। वे स्वयं ही,एक साथ पाँच-पाँच, मेरे पीछे पड़ जाती हैं।"

वह औंटे के थोरे पर बैठ गया। उसने बड़े विस्तार से बतलाया कि मुझे स्त्रियाँ किस प्रकार प्यार करती हैं और उनमें मैं कैसी चैन की बंशी बजाता हूँ। फिर वह चला गया। उसके बाहर जाने पर खट से किवाड़ों के बंद होने का शब्द हुआ। हम लोग चुपचाप बहुत देर तक बैठे रहे और मन-ही-मन उसके और उसकी बातचीत के बारे में सोचते-विचारते रहे। तब हम लोगों ने सहसा एक साथ मौन भंग किया। हमारी बातचीत से स्पष्ट था कि हम उससे एक से ही प्रसन्न थे। वह बड़ा बढ़िया और सुहृद व्यक्ति था, उसमें अधिकारियों का सा गरूर नहीं था। वह हमसे बड़ी सरलता से मिला, हमारे साथ बैठा और हमसे घुलघुलकर बातचीत की। हमसे इस तरह कोई भी मिलने नहीं आया था और न किसीने इस प्रकार की सुहृदतापूर्ण बातें ही की थीं। हम लोग जरी का काम करने-

वाली कुमारियों पर उसकी विजय की बात बराबर किया करते थे। वे कुमारियाँ जब आँगन में हमें देखतीं तो घृणा से नाक सिकोड़ लेतीं और चली जातीं। वे इस प्रकार निहारतीं, मानों हम हवा हों। पर हम लोग जब उनसे बाहर मिलते या वे हमारी खिड़कियों के पास से होकर जातीं तो उनकी प्रशंसा ही करते। जाड़े में वे रोएँदार जाकेट और छज्जेदार हैट लगाकर जोड़ा खोजने निकलतीं, गर्मी में हैट फूलों से आच्छादित रखतीं और हाथों में रंगीन छतुरियाँ रहा करतीं। हम उनके बारे में ऐसी-ऐसी बातें किया करते कि यदि वे सुन पातीं तो लज्जा और क्रोध से पगली हो जातीं।

"कहीं वह कुमारी टानिया को न फँसावे!"—भंडारी ने सहसा चिंतित स्वर से कहा।

हम लोग चुप रह गए, इन शब्दों से हमें गहरी चोट लगी। टानिया तो हमारे ध्यान से एकदम उतर गई थी। एक ओर वह थी और दूसरी ओर पुष्ट और रूपवान सिपाही।

तदनंतर जोरों की बहस आरंभ हुई। हममें कुछ लोग इस विचार के थे कि टानिया अपने को इतना नहीं गिरा सकती। दूसरे दल के विचार से वह सिपाही से पार नहीं पा सकती थी। तीसरे दल ने प्रस्ताव किया कि टानिया को वश में ले आने के लिये सिपाही को ललकारा जाय। अंत में, निश्चय हुआ कि हम लोग टानिया और सिपाही पर नजर रखें और टानिया को इसके बारे में सावधान कर दें। इस निश्चय के बाद बहस खतम हो गई।

सब से चार हफ्ते बीत गए। सिपाही अब उजली रोटियाँ पकाने लगा था। वह कुमारियों की ओर भी जाया करता था। बहुधा हमारे पास भी आता, पर कुमारियों पर अपनी विजय की कभी चर्चा न करता। वह केवल मूँछें उमेठता और बड़ी लालसा से ओंठ चाटा करता।

टानिया पहले की ही भाँति प्रतिदिन सुबह रोटियाँ लेने आया करती। वह वैसी ही देदीप्यमान, मनोहर और सुहृद थी। हमने एक-दो बार उससे सिपाही के बारे में बात करने का प्रयत्न भी किया, पर वह उसे 'तेली का बरधा' कहकर बात बढ़ने ही न देती, चारों ओर उसकी हँसी उड़ाती। इससे हमें शांति मिली। हम जानते थे कि जरी का काम करनेवाली कुमारियों का सिपाही के साथ कैसा व्यवहार है। पर हमें अपनी टानिया का गर्व था। उसके व्यवहार से हम सब गौरवान्वित हो रहे थे। हम उसीका अनुकरण करने लगे और अपनी बात-चीत में सिपाही का बहुत थोड़ा ध्यान रखने लगे। वह हमें दिन-दिन अधिक प्रिय लगने लगी। हम नित्यप्रति अधिक सौहार्द और उदारता का बर्ताव करते।

एक दिन सिपाही हमसे मिलने आया। उसने कुछ शराब पी ली थी। वह बैठ गया और हँसने लगा। जब हम लोगों ने पूछा कि कहो क्यों हँस रहे हो, तो उसने बतलाया—

"अजी, उनमें से दो—लिडका और ग्रुश्का—हमारे लिये एक-दूसरे को नोचे खा रही थीं। आपको देखना था कि

"इसका क्या मतलब !"—सिपाही ने पूछा।

"हाँ वही !"

"क्या कह रहे हो ?"

"कुछ नहीं—यों ही कुछ निकल पड़ा !"

"न, ठहरो ! बात क्या है ? समझा क्या ?"

भंडारी ने कोई उत्तर न दिया। वह फुर्ती के साथ खुर्चनी से भट्ठे में अपना काम करता रहा। अधपकी रोटियाँ भट्ठे में रखता और जो पक गई थीं उन्हें बाहर निकालता, उन्हें निकालकर पटापट जमीन पर पटकता। लड़के उन्हें पत्तलों में बाँध लेते। मानों वह सिपाही की बात एकदम भूल गया हो। सिपाही सहसा खड़-मड़ा उठा, उठकर उसके पास पहुँचा और भट्ठे की बगल में खड़ा हो गया। इतना निकट कि खुर्चनी के डंडे के लग जाने की पूरी आशंका थी। भंडारी इधर-उधर बिना देखे, दनादन खुर्चनी चला रहा था।

"न, बतलाओ, वह कौन है ? तुमने मेरा अपमान किया ! मैं ? कोई मेरी बराबरी नहीं कर सकता। न, आप मुझसे ऐसी अपमान-जनक बातें करते हैं ?"

सचमुच, उसके हृदय में गहरी चोट लगी थी। सिपाही में अभिमान करने के योग्य केवल एक ही बात थी, वह थी स्त्रियों का फँसा लेना। हो सकता है कि इसके अतिरिक्त उसमें और कोई गुण ही न रह गया हो, केवल इसी एक से वह अपने को जीवित समझ सकता था।

वे एक-दूसरे से कैसा वर्ताव कर रही हैं। अहह ! एक ने दूस
का झोंटा पकड़कर उसे रास्ते में दे मारा और छाती पर चढ़ बैठी
हा ! हा ! हा ! वे दोनों एक दूसरे के चेहरों को नोच और वको
रही थीं। तमाशा देखकर हँसते-हँसते दम निकलने लगता था
क्या बात है कि स्त्रियाँ कायदे के साथ लड़ भी नहीं सकतीं ? वे
एक-दूसरे को क्यों बराबर चोंथा करती हैं ? ऐं ?"

वह बेंच पर बैठ गया। वह स्वस्थ, प्रफुल्लित और विनोदपूर्ण
था। बैठकर हँसने लगा। हम लोग चुप थे। हम लोगों पर उसका
बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

"कहो जी, कैसी बढ़िया बात है ! हमारा कैसा भाग्य है !
स्त्रियाँ हमें कितना चाहती हैं। ऐं ? हम तब तक हँसते रहेंगे जब
तक शिथिल न पड़ जायँ।"

उसने रोएँदार गोरे-गोरे हाथ उठाए और उन्हें घुटनों पर
पटक दिया। उसकी आँखों से आश्चर्य की एक ज्योति फूट
रही थी, मानों वह रमणियों के संबंध में अपने सौभाग्य पर स्वयं
चकित हो। उसका मुख-मंडल हर्ष और परितोष से चमक
रहा था। आज वह अपने होंठ पहले से अधिक चाट रहा था।

भंडारी खुर्चनी बड़ी तेजी के साथ चला रहा था। भट्ठे की
सतह पर वह क्रोध के साथ चल रही थी। सहसा वह व्यंग्य
के साथ बोल उठा—

"तिनका तोड़ने में बल की क्या आवश्यकता ! सखुए की
डाल तोड़नी पड़े तो पता चले !"

"इसका क्या मतलब !"—सिपाही ने पूछा।

"हाँ वही !"

"क्या कह रहे हो ?"

"कुछ नहीं—यों ही कुछ निकल पड़ा !"

"न, ठहरो ! बात क्या है ? सबुआ क्या ?"

भंडारी ने कोई उत्तर न दिया। वह फुर्ती के साथ खुर्चनी से भट्ठे में अपना काम करता रहा। अधपकी रोटियाँ भट्ठे में रखता और जो पक गई थीं उन्हें बाहर निकालता, उन्हें निकालकर पटा-पट जमीन पर पटकता। लड़के उन्हें पत्तलों में बाँध लेते। मानों वह सिपाही की बात एकदम भूल गया हो। सिपाही सहसा खड़-भड़ा उठा, उठकर उसके पास पहुँचा और भट्ठे की बगल में खड़ा हो गया। इतना निकट कि खुर्चनी के डंडे के लग जाने की पूरी आशंका थी। भंडारी इधर-उधर बिना देखे, दनादन खुर्चनी चला रहा था।

"न, बतलाओ, वह कौन है ? तुमने मेरा अपमान किया ! मैं ? कोई मेरी बराबरी नहीं कर सकता। न, आप मुझसे ऐसी अप-मान-जनक बातें करते हैं ?"

सचमुच, उसके हृदय में गहरी चोट लगी थी। सिपाही में अभिमान करने के योग्य केवल एक ही बात थी, वह थी स्त्रियों का फँसा लेना। हो सकता है कि इसके अतिरिक्त उसमें और कोई गुण ही न रह गया हो, केवल इसी एक से वह अपने को जीवित समझ सकता था।

वे एक-दूसरे से कैसा वर्ताव कर रही हैं। अहह ! एक ने दूसरी का झोंटा पकड़कर उसे रास्ते में दे मारा और छाती पर चढ़ वैठी। हा ! हा ! हा ! वे दोनों एक दूसरे के चेहरों को नोच और वकोट रही थीं। तमाशा देखकर हँसते-हँसते दम निकलने लगता था। क्या वात है कि स्त्रियाँ कायदे के साथ लड़ भी नहीं सकतीं ? वे एक-दूसरे को क्यों वरावर चोंथा करती हैं ? ऐं ?"

वह वेंच पर वैठ गया। वह स्वस्थ, प्रफुल्लित और विनोदपूर्ण था। वैठकर हँसने लगा। हम लोग चुप थे। हम लोगों पर उसका वहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

"कहो जी, कैसी वढ़िया वात है ! हमारा कैसा भाग्य है ! स्त्रियाँ हमें कितना चाहती हैं। ऐं ? हम तव तक हँसते रहेंगे जव तक शिथिल न पड़ जायँ।"

उसने रोएँदार गोरे-गोरे हाथ उठाए और उन्हें घुटनों पर पटक दिया। उसकी आँखों से आश्चर्य की एक ज्योति फूट रही थी, मानों वह रमणियों के संवंध में अपने सौभाग्य पर स्वयं चकित हो। उसका मुख-मंडल हर्ष और परितोष से चमक रहा था। आज वह अपने होंठ पहले से अधिक चाट रहा था।

भंडारी खुर्चनी बड़ी तेजी के साथ चला रहा था। भट्ठे की सतह पर वह क्रोध के साथ चल रही थी। सहसा वह व्यंग्य के साथ बोल उठा—

"तिनका तोड़ने में वल की क्या आवश्यकता ! सखुए की डाल तोड़नी पड़े तो पता चले !"

"इसका क्या मतलब !"—सिपाही ने पूछा।

"हाँ वही !"

"क्या कह रहे हो ?"

"कुछ नहीं—यों ही कुछ निकल पड़ा !"

"न, ठहरो ! बात क्या है ? समझा क्या ?"

भंडारी ने कोई उत्तर न दिया। वह फुर्ती के साथ खुर्चनी से भट्ठे में अपना काम करता रहा। अधपकी रोटियाँ भट्ठे में रखता और जो पक गई थीं उन्हें बाहर निकालता, उन्हें निकालकर पटापट जमीन पर पटकता। लड़के उन्हें पत्तलों में बाँध लेते। मानों वह सिपाही की बात एकदम भूल गया हो। सिपाही सहसा खड़-मड़ा उठा, उठकर उसके पास पहुँचा और भट्ठे की बगल में खड़ा हो गया। इतना निकट कि खुर्चनी के डंडे के लग जाने की पूरी आशंका थी। भंडारी इधर-उधर बिना देखे, दनादन खुर्चनी चला रहा था।

"न, बतलाओ, वह कौन है ? तुमने मेरा अपमान किया ! मैं ? कोई मेरी बराबरी नहीं कर सकता। न, आप मुझसे ऐसी अपमान-जनक बातें करते हैं ?"

सचमुच, उसके हृदय में गहरी चोट लगी थी। सिपाही में अभिमान करने के योग्य केवल एक ही बात थी, वह थी स्त्रियों का फँसा लेना। हो सकता है कि इसके अतिरिक्त उसमें और कोई गुण ही न रह गया हो, केवल इसी एक से वह अपने को जीवित समझ सकता था।

संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं जिन्हें अपने जीवन की सबसे मूल्यवान और उत्तम बात भी आत्मा या शरीर के लिये एक प्रकार का रोग हो जाती है। वे अपना सारा जीवन उसीमें बिता देते हैं। उसीके लिये जीते हैं, उसका भोग भोगते हैं, उसीसे अपना निर्वाह करते हैं, औरों से उसीकी चर्चा किया करते हैं और उसीके द्वारा साथियों का ध्यान भी अपनी ओर आकृष्ट किया करते हैं। उसीके लिये लोगों से सहानुभूति इकट्ठी किया करते हैं, उसके अतिरिक्त उनके लिये और कुछ भी नहीं होता। यदि वह रोग छीन लिया जाय, उसे अच्छा कर दिया जाय तो वे दुःखी हो जाते हैं, क्योंकि अपने जीवन का एक-मात्र साधन खो बैठते हैं, एकदम खोखले हो जाते हैं। कभी-कभी उनका जीवन इतना गिर जाता है कि वे जान-बूझकर अवगुणों की कमाई करते और जीते हैं। कहा जा सकता है कि मनुष्य बहुधा बाध्य होकर अवगुणी बन जाते हैं।

सिपाही को बात लग गई। वह भंडारी के पास जाकर गर्जने लगा—

"न, बताओ, वह कौन है ?"

"कह दें !" भंडारी ने सहसा मुँह फेरा।

"हाँ ?"

"टानिया को जानते हो ?"

"हाँ ?"

"अच्छा, वही। जरा प्रयत्न कर देखो !"

"मैं ?"

"हाँ, आप ही !"

"वह ? उहँ, मेरे सामने कुछ नहीं—ओह ?"

"देखेंगे न !"

"देखोगे ! हा ! हा !"

"वह तो ·····"

"महीने भर का समय चाहिए"।

"झूठे घमंड में क्यों फूलते हो ?"

"पखवारा भर ठहरो ! दिखा दूँगा ! टानिया क्या है ? कुछ नहीं। ओह !"

"अच्छा, जाओ ! अहाता हमारा है !"

"पखवारे भर में काम सिद्ध ! उहँ, तुम—"

"कहते हैं न, चले जाओ !"

भंडारी सहसा कुपित हो गया, खुचनी भाँजने लगा। सिपाही चकपकाकर भाग खड़ा हुआ, जाकर दूर खड़ा हो गया, सहमकर निहारने लगा। फिर धमकाते हुए बोला—"अच्छा, देखा जायगा !" ऐसा कहकर वह चला गया।

जब तक झगड़ा होता रहा, हम सब चुपचाप बैठे थे, उसीमें डूबे हुए थे। पर उसके जाते ही उत्कंठित हो उठे, ज़ोर-ज़ोर से बातें करने लगे। एक भारी कोलाहल उठ खड़ा हुआ।

कोई भंडारी पर बिगड़ उठा—"पावेल ! बड़ा बुरा काम किया !"

"अपना काम देखो"—भंडारी ने रुखाई से उत्तर दिया। हम

मझ गए थे कि सिपाही के हृदय में बड़ी गहरी चोट लगी है।
ानिया के हक में यह बहुत बुरी बात थी। इस भावना के उठते
ी हम अंतर्ज्वाला से आकुल हो उठे। हमें बड़ा कुतूहल था कि
क्या होगा? क्या टानिया उससे बच जायगी? सभी लोग
दृढ़तापूर्वक बोल उठे—"टानिया उसके जाल में नहीं फँस
सकती? सिपाही! तुम उसे छू भी नहीं सकते!"

हम अपनी पूज्य प्रतिमा की शक्ति-परीक्षा का समय आकुलता-
पूर्ण उत्कंठा से देखने लगे। हमने सिद्ध कर दिया कि वह एक
शक्तिशालिनी देवी है,इस अग्नि-परीक्षा में विजयिनी होगी। अंत में
हम सोचने लगे कि सिपाही को भलीभाँति नहीं उकसाया गया
संभवतः वह झगड़े को भूल ही जाय। अब हमें उसपर निरंतर
व्यंग्य छोड़ना चाहिए। तब से हम एक दूसरा ही जीवन व्यतीत
करने लगे जो आकुलतापूर्ण कठोरता से युक्त था, अभूतपूर्व था।
अब सारा दिन बहस में ही बीतने लगा, मानों हमारी गति पहले
से तेज हो गई हो। बातें अधिक और अच्छी-अच्छी होने लगीं।
हमने एक दानव से प्रतिद्वंद्विता की थी, टानिया हमारा लक्ष्य थी।
जब भंडारी द्वारा पता चला कि 'सिपाही टानिया का पीछा करने
लगा', तो हमें एक प्रकार की साह्लाद आशंका होने लगी। हमें
जीवन इतना रोचक प्रतीत होने लगा कि मालिक के काम बढ़
देने का कुछ भी ध्यान न रहा। हम पुराने नौकर थे इसलिये मालि
ने सात सेर आँटा प्रतिदिन और बढ़ा दिया। हम सचमुच क
से थकते न थे, दिनभर टानिया का ही नाम जीभ पर चढ़ा रह

प्रतिदिन उसे विशेष धैर्य के साथ निरखते। कभी-कभी मन में उसका चित्र अंकित करते—आज जब वह आवेगी तो पहले-सी न होगी रूप-रंग परिवर्तित होगा। हमने उससे न तो झगड़े की ही कोई चर्चा की और न कोई प्रश्न ही किया। सदा की भाँति प्रेम-पूर्ण व्यवहार करते रहे। फिर भी हममें एक नई विशेषता आ गई थी, एक अद्भुत बात हो गई थी। यह और कुछ नहीं एक 'भारी कुतूहल' था, जो छुरी की भाँति तीक्ष्ण और कठोर था।

"भाइयो! आज दिन अधिक चढ़ आया है!"—एक दिन सवेरे भंडारी ने काम लगाते समय कहा।

विना चेताए ही हम पूर्ण सावधान थे, फिर भी चौंक पड़े।

"उसे परख लो! सीधे यहीं आनेवाली है!"—भंडारी ने बताया।

एक साथी घबड़ाकर बोला-"क्या! कोई नई बात देखनी होगी!"

एक कुतूहलपूर्ण तर्क-वितर्क फिर उठ खड़ा हुआ, कोलाहल मच गया। आज हम सिद्ध कर रहे थे कि जिस पात्र में हमने उच्च भावनाओं का आरोप किया है, वह पवित्र और दूषणरहित है। आज पहले-पहल जान पड़ा कि सचमुच, कोई भारी खेल खेला जा रहा है। कहीं पवित्रता की सिद्धि के फेर में हम उस दिव्य-मूर्ति को ही न खो बैठें! पखवारे भर हम बराबर सुनते रहे कि सिपाही निर्बाध गति से उसका पीछा कर रहा है। पर किसी ने टानिया से पूछा नहीं कि तुमने उसके साथ कैसा बर्ताव किया। वह सदा की भाँति प्रतिदिन सवेरे रोटियाँ लेने आती, उसका व्यवहार ज्यों-का-त्यों था।

आज सवेरे भी हमने बाहर उसकी कंठ-ध्वनि सुनी—"दीन वंदियो ! मैं आ गई।"

किवाड़ खोल दिए गए। वह भीतर आई तो हमने अभ्यास के विरुद्ध दूसरा ही बर्ताव किया। हम सब चुप रहे, आँखें उसीपर गड़ी हुई थीं। कैसे बोलें और क्या कहें ? सारी मंडली उदास और मौन थी। इस अपरिचित स्वागत से वह चकपका-सी रही थी। सहसा उसका मुख-मंडल विवर्ण हो गया, वह घवड़ाकर निरुद्ध कंठ से बोली—"क्यों, आज ऐसा क्यों ?"

"और तुम ?"—भंडारी कड़ककर व्यंग्य से बोला। उसकी दृष्टि उसीपर गड़ी हुई थी।

"क्या करती हूँ ?"

"कुछ नहीं !"

"अच्छा, तो जल्दी से रोटियाँ दे दो।"

पहले उसने कभी जाने की जल्दी नहीं की थी।

"अभी बहुत समय है !"—भंडारी ने कहा। वह न तो हिला और न आँखें ही उसपर से हटाईं।

वह सहसा मुँह फेरकर चली गई।

भंडारी ने खुर्चनी उठाई, और उसे शांतिपूर्वक भट्ठे में चलाते हुए बोला—"भाई, लज्जित तो होता है ! पर एक सिपाही ! तुच्छ जानवर—नीच कुत्ता !"

भेड़ों के झुंड की भाँति हम चारों ओर घूमने लगे। फिर चुपचाप बैठ गए, अंधाधुंध काम करने लगे।

एक ने कहा—"संभवतः, अंत में—"

"चुप रहो"—भंडारी गरज उठा।

भंडारी एक नीति का मनुष्य था, हमसे अधिक ज्ञानवान था। उसकी तड़प सुनकर विश्वास हो गया कि सिपाही की विजय हुई। हमारा जी दुःखी हो गया, सिर झुक गया।

बारह बजे जब हम भोजन करने बैठे, सिपाही कमरे में आया। वह पहले से साफ-सुथरा और चंचल था, हमें घूर रहा था। पर हम उससे आँखें भी नहीं मिला सकते थे।

"महानुभावो, तो क्या सिपाही की विशेषता देखनी है ?"—उसने घमंड से मुसकुराते हुए कहा।

"चलो बाहर चलो, किसी छेद से देखो, समझा ?"

हम बाहर निकले और आपस में धकमधक्का करते हुए खड़े हो गए। फिर काठ की दीवाल में सटकर दरारों से आँगन की ओर देखने लगे। देर तक परखना नहीं पड़ा। तुरत ही तानिया बहुत जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाती हुई, सशंक दृष्टि से इधर-उधर देखती हुई, बर्फ के मटमैले पानी और कीचड़ से होकर आँगन को पार कर गई। वह भंडार-घर में घुस गई। सिपाही भी गुनगुनाता हुआ उसी ओर बढ़ा, उसे उतावली नहीं थी। उसके हाथ जेब में थे, मूँछें हिल रही थीं।

पानी बरस रहा था। बूँदें मटमैले जल में गिर रही थीं। उनके गिरने से जल हिल उठता था। दिन धुँधला और भीषण था। छतों पर अब भी बर्फ बिछी हुई थी। उसपर धूल की एक भूरी

आज सवेरे भी हमने बाहर उसकी कंठ-ध्वनि सुनी—"दीन वंदियो ! मैं आ गई।"

किवाड़ खोल दिए गए। वह भीतर आई तो हमने अभ्यास के विरुद्ध दूसरा ही बर्ताव किया। हम सब चुप रहे, आँखें उसीपर गड़ी हुई थीं। कैसे बोलें और क्या कहें ? सारी मंडली उदास और मौन थी। इस अपरिचित स्वागत से वह चकपका-सी रही थी। सहसा उसका मुख-मंडल विवर्ण हो गया, वह घबड़ाकर निरुद्ध कंठ से बोली—"क्यों, आज ऐसा क्यों ?"

"और तुम ?"—भंडारी कड़ककर व्यंग्य से बोला। उसकी दृष्टि उसीपर गड़ी हुई थी।

"क्या करती हूँ ?"

"कुछ नहीं !"

"अच्छा, तो जल्दी से रोटियाँ दे दो।"

पहले उसने कभी जाने की जल्दी नहीं की थी।

"अभी बहुत समय है !"—भंडारी ने कहा। वह न तो हिला और न आँखें ही उसपर से हटाईं।

वह सहसा मुँह फेरकर चली गई।

भंडारी ने खुर्चनी उठाई, और उसे शांतिपूर्वक भट्ठे में चलाते हुए बोला—"भाई, लज्जित तो होता है ! पर एक सिपाही ! तुच्छ जानवर—नीच कुत्ता !"

भेड़ों के झुंड की भाँति हम चारों ओर घूमने लगे। फिर चुपचाप बैठ गए, अंधाधुंध काम करने लगे।

एक ने कहा—"संभवतः, अंत में—"

"चुप रहो"—भंडारी गरज उठा।

भंडारी एक नीति का मनुष्य था, हमसे अधिक ज्ञानवान था। उसकी तड़प सुनकर विश्वास हो गया कि सिपाही की विजय हुई। हमारा जी दुखी हो गया, सिर झुक गया।

बारह बजे जब हम भोजन करने बैठे, सिपाही कमरे में आया। वह पहले से साफ-सुथरा और चंचल था, हमें घूर रहा था। पर हम उससे आँखें भी नहीं मिला सकते थे।

"महानुभावो, तो क्या सिपाही की विशेषता देखनी है ?"—उसने घमंड से मुसकुराते हुए कहा।

"चलो बाहर चलो, किसी छेद से देखो, समझा ?"

हम बाहर निकले और आपस में धकमधक्का करते हुए खड़े हो गए। फिर काठ की दीवाल में सटकर दरारों से आँगन की ओर देखने लगे। देर तक परखना नहीं पड़ा। तुरत ही टानिया बहुत जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाती हुई, सशंक दृष्टि से इधर-उधर देखती हुई, बर्फ के मटमैले पानी और कीचड़ से होकर आँगन को पार कर गई। वह भंडार-घर में घुस गई। सिपाही भी गुनगुनाता हुआ उसी ओर बढ़ा, उसे उतावली नहीं थी। उसके हाथ जेब में थे, मूँछें हिल रही थीं।

पानी बरस रहा था। बूँदें मटमैले जल में गिर रही थीं। उनके गिरने से जल हिल उठता था। दिन धुँधला और भीषण था। छतों पर अब भी बर्फ बिछी हुई थी। उसपर धूल की एक भूरी

हानिया भी बाहर आई। उसकी आँखें प्रसन्नता से चमक रही थीं, होठों पर मुस्कान थी, गति स्वच्छ लड़खड़ा रहे थे, सीधे नहीं पड़ते थे।

हम इसे नहीं सह सके, दरवाजे की ओर टूट पड़े, दौड़ गए। उसे बहुत बुरी तरह, जोर से और जंगलियं धिक्कारने लगे।

वह रुककर खड़ी हो गई, मानों उसके पैर कीचड़ में हों। हमने मंडल बाँधकर उसे घेर लिया, बड़ी उच्छृं साथ तंग करने लगे। भद्दे शब्दों में गालियाँ दीं, अत्यंत लज्जा बातें कहीं।

वह जकड़ी हुई खड़ी थी, हम जी-भर उसकी हँसी उड़ा न जाने क्यों हम उसकी करतूत नहीं सह सकते थे। वह में खड़ी थी, जब अपमानजनक बातें सुनती तो इधर-उधर लगती।। हम शब्दों के द्वारा उसपर कीचड़ उछाल रहे थे- उड़ेल रहे थे।

उसके चेहरे का रंग बदल गया, वह जल्दी-जल्दी साँ

लगी, होंठ काँपने लगे। मानों उसे घेरकर हमने बदला चुकाया, लूट लिया। वह हमारी थी, हमने अपनी सारी सुवस्तुएँ, सुभावनाएँ उसे मुक्तहस्त होकर दी थीं। थे तो ये भिखमंगों के ही टुकड़े, पर हम थे छब्बीस और वह थी अकेली। हमें इसका खेद भी नहीं था। उसे अपराध के अनकूल ही दंड दिया गया था। उसका कैसा अपमान हुआ! वह अब भी मौन थी, हमें आँखें फाड़फाड़कर निहार रही थी, काँप रही थी।

हम हँस रहे थे, गरज रहे थे, चिढ़ा रहे थे। बाहरी लोग भी इकट्ठे हो गए थे, वे हमारा साथ दे रहे थे। एक साथी ने उसके चोगे का किनारा पकड़कर खींचा।

सहसा उसकी आँखें चमक उठीं, रोंगटे खड़े हो गए। उसने हाथ ऊपर उठाए और ऊँचे स्वर में शांतिपूर्वक कहा—"हाय, दुखिया बंदियो!" वह सीधे आगे बढ़ी, मानों सामने कोई हो ही नहीं—हम उसे छेंके ही न हों।

किसीने उसे रोका नहीं। घेरे से निकलकर मुँह फेरे हुए उसने अत्यंत घृणा के साथ ऊँचे स्वर में कहा—"ओह, पानी के बुलबुलो! कारागारियों!"—और चली गई।

हम आँगन में खड़े थे। पानी बरस रहा था, सूर्य अदृश्य था, आकाश धुँधला हो रहा था। हम भी चुपचाप उसी पथरीले और सिड़ले मुँहहरे में चले गए। पहले ही की भाँति सूर्य हमारी खिड़की से नहीं झाँकता। टानिया फिर कभी नहीं आई।

बेड़े पर

(१)

सजल मेघ प्रशांत सरिता के वक्षस्थल के ऊपर मंद-मंद गति से उड़ रहे हैं। पल-पल पर वे सघन होते जाते हैं और नीचे उतरे आ रहे हैं। दूर तक दृष्टि डालने से मेघों के छिन्न-भिन्न भूरे-भूरे छोर प्रवाहित एवं पंकिल जल-राशि का धरातल स्पर्श करते हुए-से जान पड़ते हैं। नदी को धारा वर्षा के जल से उमड़कर वह रही है। जहाँ मेघ जल के धरातल को स्पर्श कर रहे हैं वहाँ एक अभेद्य प्राचीर आकाश तक उठी हुई है। उससे नदी का प्रवाह और बेड़े का मार्ग रुक गया है।

धारा इस प्राचीर से टकराकर चक्करदार हो जाती है—वह उस प्राचीर को अनायास प्रक्षालित कर रही है। प्रबल लहरों के आघात से 'हर-हर' शब्द हो रहा है। सरिता टकराकर पलटती है और दोनों ओर त्वरित गति से फैल जाती है। वर्षा की श्यामा रजनी के कारण आर्द्र कुहरा छाया हुआ है।

बेड़ा आगे बढ़ा जा रहा है। सजल मेघ-पटल के फट जाने से दूरस्थित घनीभूत प्रांतर झलकने लगता है। तरंगिणी के तट अदृश्य हैं, तम से आच्छादित हैं। वर्षा को बाढ़ के कारण सरित्-क्रोड़ से उठी हुई तरंगों ने तटों को बहुत दूर तक जलमय कर दिया है।

नोचे सरिता सागर के समान विस्तीर्ण हो गई है। ऊपर

आकाश मेघ-राशि से परिपूर्ण है, भार-संयुक्त हो गया है, स्थूल पड़ गया है और जलार्द्र दिखाई देता है।

वायु का नाम नहीं है। काषायवस्त्रधारी श्यामल दृश्य व्योम वर्णहीन है। बेड़ा त्वरित गति से निस्वन बहाव का ओर बढ़ता चला जा रहा है। सहसा अंधकार को चीरकर एक स्टीमर आता दिखाई दिया। वह धुएँ की चिमनी से चिनगारियाँ उगल रहा है। वेग से घूमते हुए पहियों के दंड से पानी को मथ रहा है। उसके लाल-लाल लैंप नेत्रों की भाँति चमक रहे हैं। वे प्रतिक्षण विशाल एवं ज्वलंत होते जाते हैं। मस्तूल पर लगा लैंप डगमगा रहा है। मानों वह निशा सुंदरी से गुप्तरीत्या आँखें लड़ा रहा हो। समस्त प्रांतर मथित नीर से शब्दायमान है। एंजिन की 'छक-छक' ध्वनि से दिशाएँ गूँज रही हैं।

"देख के"—बेड़े में से शब्द हुआ। कंठध्वनि किसी भारी गले की थी। बेड़े के पुच्छभाग पर दो व्यक्ति खड़े हैं। दोनों के हाथ में लंबी-लंबी लग्गियाँ हैं। इन्हीं से वे बेड़े को खे रहे हैं। लग्गियाँ पतवार का काम दे रही हैं। बेड़े के मालिक के लड़के का नाम 'मिटिया' है। वह बारह वर्ष का बच्चा है, उदास चेहरे का बालक है। दुर्बल है, पर है मनोरम। दूसरा सरजो नाम का एक किसान है, खेने के लिये नौकर रखा गया है। यह स्थूलकाय और हृष्ट-पुष्ट है, लाल-लाल सुनहली दाढ़ी है, ऊपरवाला ओंठ उभड़ा हुआ है, मानों हँसते समय खुल गया है। नीचे लंबी-लंबी और सुदृढ़ दंतराजि दिखाई देती है।

बेड़े पर

(१)

सजल मेघ प्रशांत सरिता के वक्षस्थल के ऊपर मंद-मंद गति से उड़ रहे हैं। पल-पल पर वे सघन होते जाते हैं और नीचे उतरे आ रहे हैं। दूर तक दृष्टि डालने से मेघों के छिन्न-भिन्न भूरे-भूरे छोर प्रवाहित एवं पंकिल जल-राशि का धरातल स्पर्श करते हुए-से जान पड़ते हैं। नदी की धारा वर्षा के जल से उमड़कर बह रही है। जहाँ मेघ जल के धरातल को स्पर्श कर रहे हैं वहाँ एक अभेद्य प्राचीर आकाश तक उठी हुई है। उससे नदी का प्रवाह और बेड़े का मार्ग रुक गया है।

धारा इस प्राचीर से टकराकर चक्करदार हो जाती है—वह उस प्राचीर को अनायास प्रक्षालित कर रही है। प्रबल लहरों के आघात से 'हर-हर' शब्द हो रहा है। सरिता टकराकर पलटती है और दोनों ओर त्वरित गति से फैल जाती है। वर्षा की श्यामा रजनी के कारण आर्द्र कुहरा छाया हुआ है।

बेड़ा आगे बढ़ा जा रहा है। सजल मेघ-पटल के फट जाने से दूरस्थित घनीभूत प्रांतर झलकने लगता है। तरंगिणी के तट अदृश्य हैं, तम से आच्छादित हैं। वर्षा की बाढ़ के कारण सरित्-क्रोड़ से उठी हुई तरंगों ने तटों को बहुत दूर तक जलमय कर दिया है।

नीचे सरिता सागर के समान विस्तीर्ण हो गई है। ऊपर

आकाश मेघ-राशि से परिपूर्ण है, भार-संयुक्त हो गया है, स्थूल पड़ गया है और जलार्द्र दिखाई देता है।

वायु का नाम नहीं है। काषायवस्त्रधारी श्यामल दृश्य व्योम वर्णहीन है। बेड़ा त्वरित गति से निस्वन बहाव की ओर बढ़ता चला जा रहा है। सहसा अंधकार को चीरकर एक स्टीमर आता दिखाई दिया। वह धुएँ की चिमनी से चिनगारियाँ उगल रहा है। वेग से घूमते हुए पहियों के दंड से पानी को मथ रहा है। उसके लाल-लाल लैंप नेत्रों की भाँति चमक रहे हैं। वे प्रतिक्षण विशाल एवं ज्वलंत होते जाते हैं। मस्तूल पर लगा लैंप डगमगा रहा है। मानों वह निशा सुंदरी से गुप्तरीत्या आँखें लड़ा रहा हो। समस्त प्रांतर मथित नीर से शब्दायमान है। एंजिन की 'छक-छक' ध्वनि से दिशाएँ गूँज रही हैं।

"देख के"—बेड़े में से शब्द हुआ। कंठध्वनि किसी भारी गले की थी। बेड़े के पुच्छभाग पर दो व्यक्ति खड़े हैं। दोनों के हाथ में लंबी-लंबी लग्गियाँ हैं। इन्हीं से वे बेड़े को खे रहे हैं। लग्गियाँ पतवार का काम दे रही हैं। बेड़े के मालिक के लड़के का नाम 'मिटिया' है। वह बारह वर्ष का बच्चा है, उदास चेहरे का बालक है। दुर्बल है, पर है मनोरम। दूसरा सरजी नाम का एक किसान है, खेने के लिये नौकर रखा गया है। वह स्थूलकाय और हृष्ट-पुष्ट है, लाल-लाल सुनहली दाढ़ी है, ऊपरवाला ओंठ उभड़ा हुआ है, मानों हँसते समय खुल गया है। नीचे लंबी-लंबी और सुदृढ़ दंतराजि दिखाई देती है।

"दाहिनी ओर!"—दूसरी बार वेड़े के अग्रभाग से शब्द हुआ। ध्वनि अंधकार में लहराने लगी।

"क्या चिल्ला रहे हैं, सब जाना-बूझा है।"—सरजी कड़ककर बोला। अपनी चौड़ी छाती को भिड़ाकर लग्गी दबाई—"मिटिया! जरा जोर से।" मिटिया ने वेड़े के तख्तों को दलदल से पैर द्वारा ठेल दिया। उसने छोटे-छोटे हाथों से लग्गी लगाई और जोर से 'हूँ' करके वेड़े को आगे बढ़ाया।

"दाहिनी ओर कसकर! अलहदियो!"—मालिक फिर चिल्लाया। उसके स्वर में रोष और चिंता दोनों का संमिश्रण था।

"चिल्लाते क्यों हैं?"—सरजी बड़बड़ाने लगा। "साथ में मरकुटहा लड़का कर दिया है, तिनका तोड़ने का तो दम नहीं और हाथ में थमा दी लग्गी। फिर भी डींक रहे हैं। सारी नदी में डींक सुनाई पड़ती है। आपने खुद भारी भूल की। पहले ही कहा था, दूसरा मल्लाह रख लें। अब चिल्ला-चिल्लाकर गला फाड़ते रहिए।"

अंतिम वाक्य उसने बड़े ऊँचे स्वर में तड़पकर कहा था। आवाज दूर तक गूँज गई। सरजी चाहता था कि मालिक सुन ले।

स्टीमर वेड़े की बगल से सट् से आगे बढ़ गया। पहिये के डंडों से जल मथ उठा। तख्ते हिलोर से नीचे-ऊपर होने लगे। वेड़े में जकड़े हुए वेंत के वेंचों में पानी का थपेड़ा छप्प से लगा। 'छपाछप्प' शब्द होने लगा। क्षण भर के लिये जान पड़ा कि स्टीमर में बलते हुए लैंप वेड़े और नदी को अपनी ज्वलंत आँखों

से तहस-नहस कर डालेंगे। उनका प्रकाश पानी में छनकर झिल-मिला रहा था। जल में एक प्रकाशमयी रेखा काँप उठी। देखते-देखते दृश्य आँखों से ओझल हो गया।

स्टीमर की हिलोर से बेड़ा कभी आगे बढ़ जाता, कभी पीछे। तख्ते नीचे-ऊपर उछलने लगे। मिटिया पानी की हिलोर से डग-मगाने लगा। उसने लग्गी को दृढ़ता से पकड़ा; वह गिरते-गिरते बचा।

"अरे रे रे रे ?"—सरजी हँस पड़ा। "यह कैसा नाच! बाबूजी फिर डींकने लगेंगे। आकर दो-एक घूँसे जमा देंगे। फिर दूसरा ही नाच नाचने लगोगे। बढ़ा, घाट की ओर !"

सरजी लोहे-सी भुजाओं के बल उछला और गहरे पानी में कसकर लग्गी लगाई। सरजी एक फुर्तीला, लंबा, प्रसन्न-वदन और स्पर्धालु व्यक्ति था। वह नंगे पैर खड़ा था, स्वयं तख्ते की तरह जान पड़ता था। वह सीधे सामने की ओर देख रहा था, बेड़े की चाल को पलट देने के लिये हर समय तैयार था।

"देख, देख! तेरा बाप मार्को का चुंबन कर रहा है। कैसा राक्षसी जोड़ा है ? न तो लज्जा है और न विचार! मिटिया! तू इनसे अलग क्यों नहीं हो जाता ? इन कुकर्मियों से अलग रहना ही भला है। क्यों ? सुना ?"

"सुनता हूँ।"—मिटिया ने भर्राई हुई आवाज में उत्तर दिया। पर उधर ताका नहीं। अंधकार में उसका पिता दिखाई पड़ रहा था।

"सुनता हूँ—हूँ—हूँ !"—सरजी व्यंग्य करता हुआ हँस पड़ा।

"कहाँ तुम अधकचरी उमर के और कहाँ यह आनंदमय जीवन !"
मिटिया के साथ किए गए दुर्व्यवहार से वह खीझ गया था।
"बुड्ढा कैसा राक्षस है ! लड़के की बहू आई, लड़के से उसे छीन लिया ! खूँसट कहीं का !"

मिटिया चुप था। वह मुड़कर पीछे की ओर देखने लगा। पीछे कुहरे की एक दूसरी प्राचीर दिखाई दे रही थी। चारों ओर बादल घिर आए थे। बेड़ा बड़ी कठिनता से चल रहा था। अगाध श्याम सलिल में वह स्थिर खड़ा था। आकाश में उड़ते हुए मेघों के भारी, सघन और काले-काले टुकड़ों ने उसे दबा लिया था। मार्ग रुका पड़ा था। सरिता अगाध और अप्रकट वात्याचक्र-सी जान पड़ती थी। चारों ओर से असंख्य पर्वत-माला से घिरी हुई-सी थी। पर्वतों के शिखर पर कुहरे की पगड़ी-सी बँध गई थी, वे आकाश की ओर बढ़ते चले जा रहे थे।

जल भी स्थिर होकर जम-सा गया था। मानों वह जड़ीभूत होकर किसीकी प्रतीक्षा कर रहा हो। बेड़े में मंद-मंद 'छप्प-छप्प' शब्द हो रहा था। उस मंद-ध्वनि में शोक और भय की आकुलता थी। यामिनी की निस्तब्धता से सन्नाटे की वृद्धि हो रही थी। "अब थोड़ी हवा चले तो अच्छा।"--सरजी बोला। "न, हवा नहीं। तब तो जल गिरने लगेगा।" उसने मन-ही-मन उत्तर भी दे लिया। वह हुक्का भर रहा था। सलाई चली। चिलम चढ़ गई, हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। जब वह दम खींचता तो अग्नि के लाल-लाल प्रकाश से उसके विशाल मुख-मंडल पर एक ज्योति

छिटक जाती। जब प्रकाश धीरे-धीरे ठंडा पड़ जाता तो वह फिर अंधकार में विलीन हो जाता।

"मिटिया !"—उसने पुकारा। वह मुड़ा नहीं, उसकी दृष्टि पीछे ही की ओर लगी हुई थी। मानों उसकी बड़ी-बड़ी आँखें कुछ खोज रही हों।

"अरे, ऐसा क्यों, बता तो सही ?"

"क्या ?"—मिटिया ने अप्रसन्न होकर उत्तर दिया।

"अरे, तेरा ब्याह ? कैसा धोखा हुआ ? क्यों, कैसे ? अरे, तेरी बहू घर आई। फिर ? हा ! हा ! हा !"

"अरे, तुम सबों ने खी-खी खी-खी क्या मचा रखा है ? उधर तो देखो !"—नदी में से धमकाती हुई आवाज सुनाई पड़ी।

"पतित गधा कहीं का !"—सरजी ने हर्षित होकर धीरे से कहा। वह फिर उसी रोचक कहानी में लग गया। "मिटिया, आ, बता। जल्दी बोल, बोलता क्यों नहीं ?"

"सरजी, मुझे छेड़ो मत।"—मिटिया जान छुड़ाने लगा। "कहते हैं, मुझसे मत बोलो—जाने दो इस पचड़े को।"

पर वह जानता था कि सरजी मानेगा नहीं। अंत में उसे बताना ही पड़ा—"अजी, उसे घर लाए, मैंने कहा—'मार्को, मैं तुम्हारा पति बनने योग्य नहीं। तुम हट्टी-कट्टी हो और मैं दुबला-पतला और रोगी हूँ। ब्याह करने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी। बाबूजी ने ब्याह करने को विवश किया। वे बराबर कहा करते—'ब्याह कर लो। ब्याह कर लो।' मैं कहता मुझे स्त्रियाँ

"कहाँ तुम अधकचरी उमर के और कहाँ यह आनंदमय जीवन !" मिटिया के साथ किए गए दुर्व्यवहार से वह खीझ गया था। "बुड्ढा कैसा राक्षस है ! लड़के की वहू आई, लड़के से उसे छीन लिया ! खूँसट कहीं का !"

मिटिया चुप था। वह मुड़कर पीछे की ओर देखने लगा। पीछे कुहरे की एक दूसरी प्राचीर दिखाई दे रही थी। चारों ओर बादल घिर आए थे। वेड़ा बड़ी कठिनता से चल रहा था। अगाध श्याम सलिल में वह स्थिर खड़ा था। आकाश में उड़ते हुए मेघों के भारी, सघन और काले-काले टुकड़ों ने उसे दबा लिया था। मार्ग रुका पड़ा था। सरिता अगाध और अप्रकट वात्याचक्र-सी जान पड़ती थी। चारों ओर से असंख्य पर्वत-माला से घिरी हुई-सी थी। पर्वतों के शिखर पर कुहरे की पगड़ी-सी वँध गई थी, वे आकाश की ओर बढ़ते चले जा रहे थे।

जल भी स्थिर होकर जम-सा गया था। मानों वह जड़ीभूत होकर किसीकी प्रतीक्षा कर रहा हो। वेड़े में मंद-मंद 'छप्प-छप्प' शब्द हो रहा था। उस मंद-ध्वनि में शोक और भय की आकुलता थी। यामिनी की निस्तब्धता से सन्नाटे की वृद्धि हो रही थी। "अब थोड़ी हवा चले तो अच्छा।"--सरजी बोला। "न, हवा नहीं। तब तो जल गिरने लगेगा।" उसने मन-ही-मन उत्तर भी दे लिया। वह हुक्का भर रहा था। सलाई वली। चिलम चढ़ गई, हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। जब वह दम खींचता तो अग्नि के लाल-लाल प्रकाश से उसके विशाल मुख-मंडल पर एक ज्योति

छिटक जाती। जब प्रकाश धीरे-धीरे ठंढा पड़ जाता तो वह फिर अंधकार में विलीन हो जाता।

"मिटिया!"—उसने पुकारा। वह मुड़ा नहीं, उसकी दृष्टि पीछे ही की ओर लगी हुई थी। मानों उसकी बड़ी-बड़ी आँखें कुछ खोज रही हों।

"अरे, ऐसा क्यों, बता तो सही?"

"क्या?"—मिटिया ने अप्रसन्न होकर उत्तर दिया।

"अरे, तेरा ब्याह? कैसा धोखा हुआ? क्यों, कैसे? अरे, तेरी बहू घर आई। फिर? हा! हा! हा!"

"अरे, तुम सबों ने खी-खी खी-खी क्या मचा रखा है? उधर तो देखो!"—नदी में से धमकाती हुई आवाज सुनाई पड़ी।

"पतित गधा कहीं का!"—सरजी ने हर्षित होकर धीरे से कहा। वह फिर उसी रोचक कहानी में लग गया। "मिटिया, आ, बता। जल्दी बोल, बोलता क्यों नहीं?"

"सरजी, मुझे छेड़ो मत।"—मिटिया जान छुड़ाने लगा। "कहते हैं, मुझसे मत बोलो—जाने दो इस पचड़े को।"

पर वह जानता था कि सरजी मानेगा नहीं। अंत में उसे बताना ही पड़ा—"अजी, उसे घर लाए, मैंने कहा—'मार्था, मैं तुम्हारा पति बनने योग्य नहीं। तुम हट्टी-कट्टी हो और मैं दुबला-पतला और रोगी हूँ। ब्याह करने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी। बाबूजी ने ब्याह करने को विवश किया। वे बराबर कहा करते—'ब्याह कर लो। ब्याह कर लो।' मैं कहता मुझे स्त्रियाँ

नहीं मरजी और मालों ने बहुत ही खरी-खरी दी है। मुझे अब कुछ नहीं करना है। समझा? मेरे हृदय में भी भारी ग्लानि हो रही है। यह घोर पातक है। न्यो मर्जी, उनके लिये तो ईश्वर के सामने उत्तर देना ही पड़ेगा।"

"हृदय में ग्लानि होती है!"—सरजी ज़ोर से बोला और हँस पड़ा। "भला मालो ने क्या कहा? वह भी सुनूँ?"

"उसने कहा—'अब मैं क्या करूँ?' वह रो उठी। 'मेरा दोष क्या? क्या मैं कुरूपा हूँ?' सरजी, वह बड़ी निर्लज्ज और दुष्टा है। 'क्या अपनी भरी जवानी लेकर ससुर के पास रहूँ?' मैंने उत्तर दिया—'तुम्हारी जो इच्छा हो करो, मैं आत्मा के विरुद्ध नहीं चल सकता। यदि तुम्हें प्यार करना होता तब न? मैं वैसा ही हूँ, कोई परिवर्तन नहीं; फिर यह हो कैसे? बाबूजी ऐसा करना घोर पातक समझते हैं। हम लोग क्या जानवर हैं?' वह रो पड़ी—'तुमने जीवन की उमंगों का सत्यानास कर डाला।' मैं समवेदना प्रकट करने लगा।—'कुछ नहीं' मैंने कहा—'सब ठीक हो जायगा।' मैं बोलता गया—'तुम किसी मठ में जा सकती हो?' यह सुनते ही वह मुझे गालियाँ देने लगी—'मिटिया तुम बड़े लुच्चे हो। दगाबाज! कायर! हिजड़ा कहीं का!"

"अजी, मैं बड़ा भाग्यवान हूँ।"—सरजी बड़ी प्रसन्नता से बोल उठा। "तो तूने सीधे मठ में जाने को कहा?"

"हाँ, सीधे।"—मिटिया ने सिधाई से कहा।

"उसने तुझे हिजड़ा कहा?"—सरजी ने स्वर ऊँचा किया।

"हाँ, मेरा घोर अपमान किया।"

"ठीक कह रही थी। सचमुच, ठीक कहती थी। तेरे मुँह में ऐसा ही थप्पड़ लगना चाहिए था।'—सरजी ने अपना स्वर बदल दिया। वह कठोरता, पर विचारशीलता के साथ बोला—"क्या तुझे नीति-विरुद्ध चलने का अधिकार है ? पर तू उसके विरुद्ध जा रहा था। संसार में सभी पदार्थों के प्रयोग का ढंग होता है। उसके विरुद्ध चलना मूर्खता है। तुझे उनके बारे में तर्क-वितर्क करने का भी अधिकार नहीं। तू ने किया क्या ? दिमाग में पागलपन समा गया। मठ, छिः ! बावला, मूर्ख कहीं का ! युवती क्या चाहती है ? तेरा मठ ! तू न इधर का रहा न उधर का। न घर का न घाट का। उसका काम तो चल गया। बुड्ढे के साथ मौज करने लगी। तूने ही बुड्ढे को पाप में डाला। गिन तो, कितने नीति-विरुद्ध कर्म किए ? चतुर बनने चले थे न !"

"नीति-विरोध तो सरजी, आत्मा के विरुद्ध चलने में है। संसार में सबके लिये एक ही विधान है। जो कार्य आत्मा के विरुद्ध हो उसे न करे। बस, बुराई से बचे रहोगे।"—मिटिया ने उत्तर दिया। वह धीरे-धीरे बोल रहा था, नतमस्तक था। वह झगड़ा मिटाने के फेर में था।

"पर, तूने बुरा किया।"—सरजी ने तीखे पड़कर उत्तर दिया। "आत्मा में बहुत सी वस्तुएँ हैं। कुछ का निग्रह आवश्यक है। आत्मा ! तू पहले इसे समझ तो ले फिर—"

"न, सरजी, ऐसा नहीं।"—मिटिया ने उत्तर दिया। वह गर्म

कैसा उन्हें ठीक करती है। तेरी माँ बड़ी प्रवीण थी। सहृदय थी, सचमुच दोनों का जोड़ा बड़ा बढ़िया था।"

मिटिया लग्गी पर ओठँगा था। पानी को निहार रहा था, चुप था।

सरजी ने बात बंद कर दी। बेड़े के अगले भाग में रमणी की मधुर खिलखिलाहट सुन पड़ी। तदुपरांत पुरुष का ठहाका सुनाई पड़ा। दोनों के आकार कुहरे से ढके हुए थे। सरजी उत्सुकता से देख रहा था। पर वे अदृष्ट-से थे। पुरुष लंबे डीलडौल का था। टाँगें फैलाए खड़ा था। उसके हाथ में लग्गी थी। वह नाटे कद-वाली रमणी की ओर झुका हुआ था। रमणी भी हाथ में लग्गी लिए थी और उससे हटकर कुछ दूर खड़ी थी। उसने पुरुष को तर्जनी अँगुली से गुदगुदाया और उल्लसित होकर खिल-खिला पड़ी।

सरजी ने गहरी साँस ली और मुँह फेर लिया। कुछ क्षण तक चुप रहा, फिर बोला—"कैसा चपला है! पर दोनों कैसे चुहल-बाज हैं! कैसा भला लगता है! मुझे ऐसी ही चीज क्यों नहीं मिलती! मैं, मैं तो कुटुंबहीन की तरह फेंका पड़ा हूँ। मैं तो ऐसी रमणी को कभी न त्यागता। मेरी भुजाएँ सदा उसकी गर्दन में पड़ी रहतीं। पर कभी ऐसा सौभाग्य ही न मिला। रमणियाँ—वे तो सूखी घास से रूखे बाल नहीं पसंद करतीं। न, बड़ी भावुक रमणी है, हाँ—हाँ, प्रच्छन्न रूप में चुड़ैल है। जीवन का आनंद लूटना चाहती है। मिटिया, क्या तू सो गया?"

"न"—मिटिया ने शांत भाव से उत्तर दिया।

"अरे, तू अपनी जिंदगी कैसे काटेगा ? सचमुच, तेरा जीवन स्तंभ की भाँति शून्य है। पर जीवन तो कठोरतर है। तू जाएगा कहाँ ? तू अपरिचित लोगों में काम-काज भी तो नहीं कर सकता। तू है भी बड़ा भद्दा! जो अपने पैरों पर नहीं खड़ा हो सकता, उसका जीवन वृथा है। संसारी जीवों के दाँत और पंजे होते हैं। वे तुम-पर आक्रमण करने लगेंगे। क्या तू अपनी रक्षा कर लेगा ? क्या करेगा ? इन्हें कोसेगा ? अरे दईमारे, तू जायगा कहाँ ?"

"मैं !"—मिटिया ने कहा। वह सहसा उठ खड़ा हुआ।—"मैं भाग जाऊँगा। जाड़े में काकेसस के पहाड़ों में चला जाऊँगा। बस, झगड़े का अंत हो जायगा। हे भगवन्! यदि किसी प्रकार छुटकारा हो जाता! ऐ अनात्मवादियो! अनीश्वरवादी मनुष्यो! तुमसे दूर रहने की ही अभिलाषा है। तुम क्यों जीवन धारण करते हो ? तुम्हारा ईश्वर कहाँ है ? बस, नाम-ही-नाम! क्या तुम्हीं ईसा के साथ रहनेवाले हो ? भेड़िये हो, सचमुच भेड़िये हो! वहीं और लोग भी हैं, उनकी आत्मा में ईसा रहता है। उनके हृदय में स्नेह है, संसार के कल्याण की लालसा है। पर तुम, तुम पशु हो, मल उगला करते हो। उन लोगों को मैंने देखा है। वे पुकार रहे हैं, मुझे वहाँ जाना है। उन्होंने मुझे पवित्र पुस्तक (बाइबिल) दी है। कहा—'पढ़, ईश्वर के वंदे इसे पढ़; प्यारे बंधु, सत्य वचनों को पढ़।' मैंने पढ़ा, ईश्वर के वचन पढ़कर आत्मा में नई ज्योति फूट पड़ी। मैं वहीं जाऊँगा। हिंसक भेड़ियो! तुम्हें त्याग

कैसा उन्हें ठीक करती है। तेरी माँ बड़ी प्रवीण थी। सहृदय थी
सचमुच दोनों का जोड़ा बड़ा बढ़िया था।"

मिटिया लग्गी पर ओठँगा था। पानी को निहार रहा था
चुप था।

सरजी ने बात बंद कर दी। बेड़े के अगले भाग में रमणी की
मधुर खिलखिलाहट सुन पड़ी। तदुपरांत पुरुष का ठहाका सुनाई
पड़ा। दोनों के आकार कुहरे से ढके हुए थे। सरजी उत्सुकता से
देख रहा था। पर वे अदृष्ट-से थे। पुरुष लंबे डीलडौल का था
टाँगें फैलाए खड़ा था। उसके हाथ में लग्गी थी। वह नाटे कद
वाली रमणी की ओर झुका हुआ था। रमणी भी हाथ में लग्गी
लिए थी और उससे हटकर कुछ दूर खड़ी थी। उसने पुरुष
को तर्जनी अँगुली से गुदगुदाया और उल्लसित होकर खिल-
खिला पड़ी।

सरजी ने गहरी साँस ली और मुँह फेर लिया। कुछ क्षण तक
चुप रहा, फिर बोला—"कैसा घपला है! पर दोनों कैसे चुहुल-
बाज हैं! कैसा भला लगता है! मुझे ऐसी ही चीज क्यों नहीं
मिलती! मैं, मैं तो कुटुंबहीन की तरह फेंका पड़ा हूँ। मैं तो ऐसी
रमणी को कभी न त्यागता। मेरी भुजाएँ सदा उसकी गर्दन में
पड़ी रहतीं। पर कभी ऐसा सौभाग्य ही न मिला। रमणियाँ—वे
तो सूखी घास से रूखे बाल नहीं पसंद करतीं। न, बड़ी भावुक
रमणी है, हाँ—हाँ, प्रच्छन्न रूप में चुड़ैल है। जीवन का आनंद
लूटना चाहती है। मिटिया, क्या तू सो गया?"

"न"—मिटिया ने शांत भाव से उत्तर दिया।

"अरे, तू अपनी ज़िंदगी कैसे काटेगा? सचमुच, तेरा जीवन स्तंभ की भाँति शून्य है। पर जीवन तो कठोरतर है। तू जाएगा कहाँ? तू अपरिचित लोगों में काम-काज भी तो नहीं कर सकता। तू है भी बड़ा भद्दा! जो अपने पैरों पर नहीं खड़ा हो सकता, उसका जीवन वृथा है। संसारी जीवों के दाँत और पंजे होते हैं। वे तुम-पर आक्रमण करने लगेंगे। क्या तू अपनी रक्षा कर लेगा? क्या करेगा? इन्हें कोसेगा? अरे दईमारे, तू जायगा कहाँ?"

"मैं!"—मिटिया ने कहा। वह सहसा उठ खड़ा हुआ।—"मैं भाग जाऊँगा। जाड़े में काकेसस के पहाड़ों में चला जाऊँगा। बस, झगड़े का अंत हो जायगा। हे भगवन्! यदि किसी प्रकार छुटकारा हो जाता! ऐ अनात्मवादियो! अनीश्वरवादी मनुष्यो! तुमसे दूर रहने की ही अभिलाषा है। तुम क्यों जीवन धारण करते हो? तुम्हारा ईश्वर कहाँ है? बस, नाम-ही-नाम! क्या तुम्हीं ईसा के साथ रहनेवाले हो? भेड़िये हो, सचमुच भेड़िये हो! यहाँ और लोग भी हैं, उनकी आत्मा में ईसा रहता है। उनके हृदय में स्नेह है, संसार के कल्याण की लालसा है। पर तुम, तुम पशु हो, मल उगला करते हो। उन लोगों को मैंने देखा है। वे पुकार रहे हैं, मुझे वहाँ जाना है। उन्होंने मुझे पवित्र पुस्तक (बाइ-बिल) दी है। कहा—'पढ़, ईश्वर के वंदे इसे पढ़; प्यारे बंधु, सत्य वचनों को पढ़!' मैंने पढ़ा, ईश्वर के वचन पढ़कर आत्मा में नई ज्योति फूट पड़ी। मैं वहीं जाऊँगा। हिंसक भेड़ियो! तुम्हें त्याग

संचार था, चैतन्यता थी। वहाँ की हँसी, उद्‌गार, ध्वनि निशा की निस्तब्धता की प्रतिद्वंद्विता कर रही थीं। उनमें वासंती जीवन की उल्लासपूर्ण अभिलाषाएँ उमड़ी पड़ रही थीं।

"मिटिया, तू उसे बुड्ढे से छीन सकता है? उधर तो देख!"—सरजी बोला। अब वह सन्नाटे को नहीं सह सकता था। उधर मिटिया की लग्गी जल में यों ही आगे-पीछे चल रही थी।

मिटिया ने ललाट का पसीना पोंछा और चुपचाप खड़ा हो गया। वह लग्गी के सहारे झुका हुआ था, हाँफ रहा था।

"आज रात में कुछ स्टीमर आनेवाले हैं।"—सरजी बोला। "अभी तक केवल एक ही दिखाई पड़ा है।" जब उसने देखा कि मिटिया उत्तर देने का प्रयास भी नहीं कर रहा है तो स्वयं ही उत्तर देने लगा।—"अभी ऋतु आरंभ हुई है, हम शीघ्र ही वहाँ पहुँच जायँगे। नदी बड़े वेग से बह रही है। तुम ऐसे क्यों खड़े हो? क्या रुष्ट हो गए? देख, मिटिया देख!"

"क्या है?"—मिटिया खीजकर चिल्ला उठा।

"कुछ नहीं, विचित्र जीव हो। बोलते क्यों नहीं? जब देखो सोचते ही रहते हो। यह बहुत बुरा है। तू तो बड़ा बुद्धिमान है न! अपने को मूर्ख समझता ही नहीं! हा! हा!"

सरजी अपनी गुरुता से तुष्ट था, क्षणभर चुप रहकर वह एक गीत गाने लगा। गाने के बाद फिर वही चर्चा छेड़ दी!

"सोचना? यह कामकाजी मनुष्य का काम नहीं। अपने बाप को देख, कभी नहीं सोचता। तेरी बहू को प्यार करता है।

जीवन का आनंद लूटता है। दोनों तुमपर हँसते हैं। मूर्ख कहीं का ! उनकी बातें तो सुन ! माकी अवश्य गर्भवती हो चुकी है। डर मत, लड़का तुझे नहीं पड़ेगा। वह बड़ा मनोहर होगा। सौतान को पड़ेगा। पर कहा जायगा तेरा ही लड़का ! हा ! हा ! हा ! तुझे 'बाबू' कहेगा। पर तू उसका भाई होगा। कैसा मजा है ! छी ! छी ! कैसा नारकीय कुटुंब है। क्यों, सच है न मिटिया ?"

"सरजो !"—वह सिसकने लगा।—"ईश्वर के नाम पर हाथ जोड़ता हूँ, मेरी आत्मा के टुकड़े-टुकड़े मत करो। जलाओ मत ! छोड़ दो, चुप रहो ! ईश्वर के नाम पर, बोलो मत। तंग मत करो। तंग करोगे तो नदी में कूद पड़ूँगा। तुम्हें पाप का भागी होना पड़ेगा। विवश मत करो। ईश्वर के लिये मुझे छोड़ दो।"

कर्कश स्वर ने रात्रि की निस्तब्धता भंग कर दी। मिटिया जोर से सिसक रहा था, तख्ते पर गिर पड़ा, मानों उसपर बिजली गि[र] पड़ी हो।

"आओ ! आओ !"—सरजी ने चिंतित होकर कहा। मिटि[या] तख्ते पर छटपटा रहा था। "बड़े विचित्र जीव हो ! ऐसा ही तो पहले ही कह देते, यह अच्छा नहीं—"

"तुम रास्ते भर तंग करते रहे, क्या मैं तुम्हारा शत्रु हूँ ?"

मिटिया फिर सिसकने लगा।

"अजीब लड़के हो ! पागल हो गए हो क्या ?"—स[रजी ने] घबड़ाकर कहा—"मैं क्या जानूँ ? मैंने कुछ करने [को] कहा नहीं !"

"सुनो, मैं इसे भूल जाना चाहता हूँ, सदा के लिये। साथ ही लज्जा भी—वेदना भी – सब कुछ। तुम बड़े निर्दय हो! मैं बाहर चला जाऊँगा—वहीं रहूँगा। अब नहीं सह सकता।"

"हाँ, हाँ, खुशी से जाओ।"—सरजो ने चिल्लाकर कहा। यह उद्गार भीषण था, अभिशाप से युक्त था। वह भय से काँप उठा। जो भीषण नाटक सामने खेला जा रहा था, उससे वह डर गया। पर नाटक का रहस्य जानने को विवश था।

"अरे! ओ! कब से पुकार रहा हूँ। तुम सब क्या बहरे हो गए!"—सीलान का कर्कश स्वर गूँज उठा।—"वहाँ क्या बड़बड़ा रहे हो? सुना?"

सीलान को चिल्लाने में मानों आनंद आता हो। शक्ति और बल से लदी हुई उस गंभीर ध्वनि ने निस्तब्धता भंग कर दी। एक के पीछे दूसरी ध्वनि गूँज रही थी। आर्द्र वायु में उष्णता बिखर जाती थी। मिटिया की छोटी-सी दुर्बल मूर्ति पिसी जा रही थी। वह उठकर फिर लग्गी चलाने लगा। सरजो ने जोर से चिल्लाकर उत्तर दिया और मन-ही-मन मालिक को कोसने लगा।

दोनों के स्वरों से वायु फटी जा रही थी। डरकर रात्रि की निस्तब्धता सिकुड़ने लगी। दोनों स्वर एक में मिल गए। बाजे की सी ध्वनि होने लगी, एक बार फिर कर्कशता आई। अंत में, वे वायु में लहराते हुए क्रमशः मंद पड़ गए।

चारों ओर फिर निस्तब्धता छा गई।

मेघों के रंध्र से होकर नीले जल पर जो सुवर्ण-रेखा पड़ रही

थी, वह क्षणभर झिलमिलाकर लुप्त हो गई, कुहरे की श्यामता में मिल गई।

बेड़ा अंधकार में निस्तब्ध बहाव की ओर चला जा रहा था।

(२)

सीलान लाल कमीज पहने आगे खड़ा था। गला खुला था, पुष्ट ग्रीवा झलक रही थी। उसकी बालदार छाती वज्र की तरह कठोर थी। ललाट पर भूरे केश बिखरे हुए थे। काली-काली चमकीली आँखें हँस रही थीं। बाहों को टेहुनी तक समेट लिया था। हाथ में लग्गी थामते ही नसें उभड़ आतीं। वह आगे की ओर झुका हुआ सामने ध्यान से देख रहा था। मार्का कुछ दूर खड़ी थी। अपनी मतवाली मुसकान से प्रेमी को निहार रही थी। दोनों मौन थे, कुछ सोच रहे थे। सीलान की दृष्टि दूरस्थित कोई दृश्य देख रही थी और मार्का उसके मुख-मंडल की चेष्टाएँ निरख रही थी।

"किसी मछुए की आग है?"—उसने मुँह फेरकर कहा।

"हाँ प्यारे! हम लोग ठीक मार्ग पर हैं।"—उसने दम साधकर कहा और कसकर लग्गी लगाई।

"तुम क्यों थकती हो?"—उसने मार्का को देखकर कहा। मार्का लग्गी लिए बड़ी मनोहर चेष्टाएँ कर रही थी।

वह सुघड़ और स्थूल थी। आँखें नीली-नीली और चमकीली थीं, गाल गुलाबी थे, पैर नंगे थे। मटमैला झीना कोट देह में सट गया था, जिससे अंग-अंग बाहर की ओर झाँक रहे थे।

उसने इधर मुँह फेरकर मुसकुराते हुए कहा—"मेरा इतना ध्यान ! मुझे कोई कष्ट नहीं।"

"इतना ध्यान ! ध्यान तो नहीं, चुंबन अवश्य करता हूँ।"—उसने उछलते हुए कहा।

"यह ठीक नहीं !"—उसने मटककर उत्तर दिया। दोनों चुप हो गए, एक-दूसरे को अभिलषित नेत्रों से निहारने लगे।

बेड़े के नीचे सलिल संगीत-ध्वनि कर रहा था। तट पर, बहुत दूर, कोयल बोल रही थी। बेड़ा धीरे-धीरे बह रहा था, सीधे चला जा रहा था। अंधकार कम हो गया, मेघ छँट गए, उनकी श्यामता दूर हो गई।

"क्यों, जानते हो, वे क्या बड़बड़ा रहे थे ? मैं जानती हूँ, मिटिया मेरे बारे में अपना दुखड़ा रो रहा था, अभी वही रो उठा था। सरजी हमें कोस रहा था।"

प्रत्युत्तर की आशा से वह सीलान का मुख ताकने लगी। इसे सुनते ही सीलान का चेहरा उग्र और भयानक हो गया।

"अच्छा !"—उसने कहा।

"हाँ-हाँ"

"यही था तो कहने की क्या आवश्यकता थी !"

"रुष्ट क्यों होते हो ?"

"तुमसे रुष्ट ? होना चाहता हूँ, पर हो नहीं सकता।"

"तुम और किसी को प्यार करते हो ?"—उसने कहा और लालसा से निहारने लगी।

थी, वह क्षणभर झिलमिलाकर लुप्त हो गई, कुहरे की श्यामता में मिल गई।

बेड़ा अंधकार में निस्तब्ध बहाव की ओर चला जा रहा था।

(२)

सीलान लाल कमीज पहने आगे खड़ा था। गला खुला था, पुष्ट ग्रीवा झलक रही थी। उसकी बालदार छाती वज्र की तरह कठोर थी। ललाट पर भूरे केश बिखरे हुए थे। काली-काली चमकीली आँखें हँस रही थीं। बाहों को टेहुनी तक समेट लिया था। हाथ में लग्गी थामते ही नसें उभड़ आतीं। वह आगे की ओर झुका हुआ सामने ध्यान से देख रहा था। मार्को कुछ दूर खड़ी थी। अपनी मतवाली मुसकान से प्रेमी को निहार रही थी। दोनों मौन थे, कुछ सोच रहे थे। सीलान की दृष्टि दूरस्थित कोई दृश्य देख रही थी और मार्को उसके मुख-मंडल की चेष्टाएँ निरख रही थी।

"किसी मछुए की आग है?"—उसने मुँह फेरकर कहा।

"हाँ प्यारे! हम लोग ठीक मार्ग पर हैं।"—उसने दम साधकर कहा और कसकर लग्गी लगाई।

"तुम क्यों थकती हो?"—उसने मार्को को देखकर कहा। मार्को लग्गी लिए बड़ी मनोहर चेष्टाएँ कर रही थी।

वह सुघड़ और स्थूल थी। आँखें नीली-नीली और चमकीली थीं, गाल गुलाबी थे, पैर नंगे थे। मटमैला झीना कोट देह में सट गया था, जिससे अंग-अंग बाहर की ओर झाँक रहे थे।

उसने इधर मुँह फेरकर मुसकुराते हुए कहा—"मेरा इतना ध्यान ! मुझे कोई कष्ट नहीं ।"

"इतना ध्यान ! ध्यान तो नहीं, चुंबन अवश्य करता हूँ ।"—उसने उछलते हुए कहा ।

"यह ठीक नहीं !"—उसने मटककर उत्तर दिया । दोनों चुप हो गए, एक-दूसरे को अभिलषित नेत्रों से निहारने लगे ।

बेड़े के नीचे सलिल संगीत-ध्वनि कर रहा था । तट पर, बहुत दूर, कोयल बोल रही थी । बेड़ा धीरे-धीरे बह रहा था, सीधे चला जा रहा था । अंधकार कम हो गया, मेघ छँट गए, उनकी श्यामता दूर हो गई ।

"क्यों, जानते हो, वे क्या बड़बड़ा रहे थे ? मैं जानती हूँ, मिटिया मेरे बारे में अपना दुखड़ा रो रहा था, अभी वही रो उठा था । सरजी हमें कोस रहा था ।"

प्रत्युत्तर की आशा से वह सीलान का मुख ताकने लगी । इसे सुनते ही सीलान का चेहरा उग्र और भयानक हो गया ।

"अच्छा !"—उसने कहा ।

"हाँ-हाँ "

"यही था तो कहने की क्या आवश्यकता थी !"

"रुष्ट क्यों होते हो ?"

"तुमसे रुष्ट ? होना चाहता हूँ, पर हो नहीं सकता ।"

"तुम और किसी को प्यार करते हो ?"—उसने कहा और लालसा से निहारने लगी ।

"दावे के साथ कहती हो ?"—सीलान ने जोर देकर कहा। उसने पुष्ट भुजाएँ पसार दीं—"अच्छा आओ, मुझे अधिक मत सताओ।"

उसने देह समेट ली। फिर लालायित नेत्रों से निहारने लगी।

"क्या खेना छोड़ दें ?"—उसने कान में कहा और उसके उत्तप्त कपोलों को चूम लिया।

"बस, वे देख लेंगे !"—वह सिर झटककर छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। पर, सीलान ने उसे एक हाथ से कसकर दाब लिया। उसके दूसरे हाथ में डाँड़ था।

"देख लेंगे ! देख लेने दो। थू ! पाप कर रहा हूँ, ठीक ! ईश्वर को इसका उत्तर भी मुझी को देना होगा। तुम उसकी नहीं थीं, अपने लिये स्वच्छंद थीं, तुम्हें इसका अधिकार था। वह भुगत रहा है, भुगते ! और मैं, मैं क्या सुखी हूँ ? मुझे अपना भी ज्ञान है। ईश्वर के समक्ष यह घोर पातक है ! महापाप है ! सब जानते हुए मैंने ऐसा किया, मैं विवश था ! अब तो प्रेम कर ही लिया; चाहे जो हो ! हाय ! यदि विवाह करने में एक महीने और रुक जाता, तो मैं ही तुमसे गाँठ जोड़ता, मिटिया की माँ मर ही चुकी थी ! केवल नीति का पालन होता। बिना संकोच, बिना पातक मैं तुम्हारा पति होता। इसी भूल से मेरा जीवन घुला जा रहा है। मैं समय से पहले ही बुड्ढा हुआ जा रहा हूँ।"

सीलान दृढ़ता और शांतिपूर्वक बोल रहा था, चेहरे से आत्म-

विश्वास झलक रहा था। मानों वह प्रेमाधिकार के लिये प्राण-पण से तैयार हो।

"अजी, जो हुआ ठीक ही हुआ! अब इस बारे में मुँह मत खोलना, यही प्रार्थना है।"—मार्को ने कहा। उसने सीलान का हाथ हटा दिया और डाँड़ चलाने लगी।

सीलान का डाँड़ा तेजी से चल रहा था। जान पड़ता, मानों वह छाती के बोझ को हलका कर रहा है। उसके मनोहर मुख-मंडल पर अपूर्व कांति थी।

धीरे-धीरे पौ फट गया। मेघों की सघनता दूर हो गई, वे इधर-उधर फैल गए, मानों सूर्यातप के स्वागत में स्थान छोड़कर हट गए हों। सरिता के जल का धरातल स्थिर हो गया था, तल-वार की धार की तरह दमक रहा था।

"कुछ दिन पहले उसने कहा था—'पिता जी, यह मेरे और आपके दोनों के लिये लज्जा की बात है, इस कुकर्म को त्याग दें।' उसका लक्ष्य तुम्हीं थीं—यह कहकर वह मुसकुराने लगा। फिर बोला—'सुमार्ग पर चलो।' मैंने कहा—'प्यारे बच्चे, अगर जान प्यारी है तो निकल जा। नहीं तो चिथड़े की तरह चीर डालूँगा। तेरे गुणों का कहीं पता तक न लगेगा। मुझे इसीका खेद है कि मैं तेरा पिता हूँ। दुष्ट कहीं का!' वह काँप उठा। 'पिता जी'—वह बोला—'क्या झूठ कह रहा हूँ?' 'तू'—मैंने कहा—'पाजी! कुत्ता! मेरा रास्ता रोकेगा? अपने पैरों तो खड़ा नहीं हो सकता। अभागे! मुर्दे! यदि तू दुर्बल न होता तो तेरी

बोटी-बोटी कटवा देता ! तेरी रोनी सूरत पर दया आ जाती है वह रो उठा । मार्को, ऐसे अपमान से मनुष्य बेकाम हो जाता है दूसरा होता तो इस बंधन को तुरत काट फेंकता और भाग जाता हम लोग तो इसमें फँसे ही हैं, दूसरों का गला भी फाँसते रहते हैं।"

"इसका तात्पर्य ?"—मार्को ने डरकर पूछा, क्योंकि उसने उग्र रूप धारण कर लिया था।

"कुछ नहीं ! उसे जान देनी है ! वह मर भी जाय तो अच्छ रास्ता तो साफ हो जायगा ! तुम्हारे नैहरवालों को सारी जमी सौंप दूँगा। बस, उनका मुँह बंद। फिर दोनों कहीं बाहर चलक चैन की बंशी बजावेंगे। कोई पूछेगा—'यह कौन है ?' कह दूँगा 'मेरी प्रेमिका।' अदालत में इकरारनामा लिखवा लेंगे। कहं दूकान खोल लेंगे और मौज से दिन बितावेंगे। रहा ईश्वर ! उसवे सामने पाप स्वीकार कर लेंगे। यहाँ के लोगों को तो कोई बाध न होगी ! मैं अपना संतप्त हृदय तो शीतल कर सकूँगा ! क्यों ? ठीक है न ?"

"हाँ !"—कहकर उसने गहरी साँस ली, आँखें बंद कर लीं, ध्यान-मग्न हो गई।

कुछ देर तक दोनों मौन रहे, केवल जल 'हर-हर' कर रहा था।

"वह रोगी है, जल्द मरेगा।"—कुछ ठहरकर सोलान बोल

"ईश्वर करे, जल्दी मरे।"—मार्को ने कहा। मानों ईश्वर उसकी यही एक प्रार्थना थी।

वसंतकालीन सूर्य की किरणें मेघों का पटल फाड़कर निकल आईं। उनके स्पर्श से जल सुनहला, विविध वर्ण का हो गया। वायु ने निःश्वास ली, प्रकृति हिल उठी, चंचल हो गई, मुसकुराने लगी। मेघों के अंतराल से नील व्योम आतप-तप्त सलिल पर हँस रहा था। बेड़ा बढ़ा जा रहा था। मेघ पीछे छूट गए। वे सघन एवं विशाल राशि के रूप में मंथर गति से एकत्र होकर प्रदीप्त सरिता के ऊपर स्वप्न के चित्रपटों की भाँति घूम रहे थे। मानों वासंती सूर्य-रश्मियों से बचने का मार्ग ढूँढ़ रहे हों। सूर्य सहर्ष अपने प्रताप द्वारा इन शारदीय झंझा के प्रतीकों की प्रतिद्वंद्विता कर रहा था।

आकाश क्रमशः स्वच्छ और प्रदीप्त होता जा रहा था। बाल-रवि सरिता की स्वर्ण-वर्ण तरंगों से ऊपर उठता हुआ रमणीयता और मनोहरता का संचार कर रहा था। वह तप्त तो नहीं था, पर वासंती प्रभात के संयोग से देदीप्यमान था, दमक रहा था। धीरे-धीरे वह स्वच्छ गगन के सोपानों से चढ़कर ऊपर पहुँच गया। दाहिनी ओर सरिता का उत्तुंग तट हरे-भरे विपिनों से विभूषित था। बाईं ओर नीलम-से हरे-हरे खेतों में ओस की बूँदें हीरे की भाँति चमक रही थीं। वायु पृथ्वी का सोंधा परिमल वहन कर रही थी, देवदारु के विपिनों की हृदयहारिणी सुगंध से लद जाने पर उसकी गति मंद पड़ जाती।

सरजी और मिटिया दोनों खड़े थे। मानों हौदों में जड़ीभूत हो गए हों। उनके मुख-मंडल में भावनाओं का संग्राम छिड़ा

सीलान ने मार्का पर दृष्टि डाली। वह शांत थी, डाँड़े पर झुकी हुई थी। उसकी चेष्टा में द्वैत-भाव था, वह सामने देख रही थी। आँखें मानों स्वप्न की तरंगों में डुबकी लगा रही हों। अधरों पर रहस्यमयी, लुभावनी मुसकान खेल रही थी—ऐसी मुसकान जिससे कुरूपा भी खिल उठती है।

"अरे! सामने देख!"—सीलान ने जोर से पुकारा। उसके पुष्ट वक्षस्थल में चैतन्यता और शक्ति उछल रही थीं।

ध्वनि से दिशाएँ काँप उठीं, तटिनी के उत्तुंग तट दूर तक प्रतिध्वनित हो उठे।

सफर का साथी

(१)

ओडेसा बंदर में उससे भेंट हुई। तीन दिनों तक लगातार वह मुझे आकृष्ट करता रहा। उसकी दाढ़ी बहुत सुंदर थी, वह काकेशिया का रहनेवाला ज्ञात होता था। रोज मेरे पास चक्कर काटता, घंटों घाट पर खड़ा रहता। टकटकी लगाकर नीचे ताकता, पंकिल जलराशि को नील कमल की-सी आँखों से निरखा करता। वह इधर कई बार आता और उदासीन भाव से देखता हुआ चला जाता! यह कौन है? मैंने देख-रेख आरंभ की। मुझे उत्कंठित करने के विचार से वह इधर बहुधा आने लगा। अंत में उसके भड़कीले कपड़ों, काली हैट, उदास गति, टकटकी लगाकर ताकने आदि सभी बातों से मैं परिचित हो गया। अब उसका आना नगण्य हो गया। स्टीमरों और एंजिनों की सीटियाँ, सिक्कड़ों की खड़खड़ाहट, मजदूरों का शोर यों ही व्याकुल किए रहता था, उसपर कौन ध्यान दे! भावनाएँ इन्हींके बोझ से दबी थीं, मस्तिष्क और शरीर जड़ीभूत हो जाते थे। सभी तो भीमकाय मशीनों के जाल में बद्ध थे। जो दक्षता और श्रम दिखावे, वही प्रख्यात हो। सभी कार्य में संलग्न थे। कोई डब्बों में माल लाद रहा था, कोई उतार रहा था। सभी थके और चिंताव्यग्र थे, इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई चिल्ला रहा था, कोई किसीको कोस रहा था। सभी धूलधूसरित और पसीने से तर थे। कोला-

हल के बीच वह बेचारा अकेला चुपचाप इधर-उधर टहला करता। न तो उसका ध्यान कहीं पर डँटता, न कोई उसीपर ध्यान देता।

चौथे दिन भोजन के समय उसका सामना हुआ। मैंने जैसे हो सके उसका परिचय प्राप्त करने का निश्चय किया। मैं भोजन की सामग्री लेकर सामने बैठ गया। खाना आरंभ कर दिया। मैं उसे निहार रहा था और बातचीत करने का अवसर ढूँढ़ रहा था।

वह सिर झुकाए खड़ा था, इधर-उधर देख रहा था। उँगलियों से छड़ी को वंशी की तरह बजा रहा था। मैं रंग-बिरंगे कपड़े पहने था, कंधे पर बिल्ला लगा था। कोयले और धूल से सारी पोशाक काली पड़ गई थी। भड़कीली पोशाकवालों से बात करने की हिम्मत ही न थी। पर आश्चर्य! वह बराबर मुझे ही ताक रहा था। आँखों में दिव्य चमक थी, लोलुपता और अप्रसन्नता थी। मुझे जान पड़ा, वह भूखा है। इधर-उधर देखकर मैंने धीमें स्वर में पूछा—"क्या आप भूखे हैं ?"

वह सचमुच भूखा था। उसने इधर-उधर देखकर मुँह फैलाया, दाँत निकाल दिए। तदनंतर मैंने आधी दाल और एक टुकड़ा रोटी उसे दी। मेरे हाथ से वह इन्हें लेकर माल के ढेर के पीछे जा बैठा। कभी-कभी सिर दिखाई पड़ जाता, काली-काली भौंहें चमक जातीं। उसके मुँह पर मुसकान फूट पड़ी। वह पलक भी भाँज रहा था और मुँह भी चलाता जाता था।

मैंने संकेत से उसे रुकने को कहा और दौड़कर मांस ले आया। मैं वहीं खड़ा हो गया। अब पूरी आड हो गई, वह

दिखाई नहीं पड़ सकता था। वह इधर-उधर देखकर भकोसने लगता, मानों कोई खाना छीनने चला आ रहा हो। मेरे दूर हट जाने पर वह शांति से खाने लगा, पर भकोसना कम नहीं हुआ। उस भुक्खड़ को निरखते-निरखते मैं ऊब उठा, पीठ फेरकर बैठ गया।

"धन्यवाद! अनेक धन्यवाद!"—उसने पहले मेरे कंधे पर हाथ रखा, फिर प्रेम से हाथ मिलाया।

कुछ देर बाद उसने अपना परिचय दिया। वह राजकुमार था, उसका नाम शक्रो था। वह एक धनाढ्य जमींदार का एक-मात्र पुत्र था। वह पहले रेलवे-क्लर्क था, अपने मित्र के साथ रहता था। एक दिन उसका मित्र सब माल-असबाब लेकर चंपत हो गया। इसने उसका पीछा करने का निश्चय किया। पता लगा कि वह बाटुम की ओर गया है। यह भी बाटुम पहुँचा। वहाँ जाने पर वह ओडेसा को निकल भागा। इसने किसी दूसरे मित्र से, जो सूरत-शक्ल और उम्र में इससे मिलता-जुलता था, पासपोर्ट माँग लिया और ओडेसा में आकर पुलिस में रिपोर्ट कर दी। मामले की जाँच होने लगी। इसीमें एक पखवारा बीत गया। उसका खर्च चुक गया। चार दिन हुए अन्न से भेंट नहीं हुई थी।

मैं ध्यान से सुन रहा था। उसके मित्र को बीच-बीच में कोसता भी जाता था। वह चुप रहने को कहता, मैं उसे ताकने लगता। मुझे युवक के लिये बड़ा खेद हुआ। वह उन्नीस वर्ष

का था, पर इतना सुकुमार कि बारह वर्ष का जान पड़ता था। रोष से उसकी आँखें लाल हो गई थीं। अपने मित्र की दोस्ती को सोचकर वह दाँत पीसने लगता। उसे केवल माल ही जाने का खेद नहीं था, बूढ़े बाप की छूरी का भी डर था।

मैंने सोचा, यदि इसकी सहायता नहीं करता तो लालची इसे चूस लेगें। ये पथिकों को कैसे-कैसे चकमें देकर फाँसते, यह मैं जानता था। मैंने उसकी सहायता करने का निश्चय किया। इतना रुपया तो मेरे पास था नहीं कि उसे टिकट ले देता इसलिये रेलवे अफसरों के पास गया, एक टिकट मुफ्त बना देने की प्रार्थना की। मैंने बड़ी-बड़ी बहसें कीं, पर फल कुछ नहीं, सभी जगह फटकार खानी पड़ी। मैंने उसे पुलिस के हेड अफसर के पास अर्जी भेजने को सलाह दी। पर उसने इसे ठीक नहीं समझा। क्यों? उसने बतलाया—"मैं जिस होटल में ठहरा था, उसका भाड़ा नहीं चुकाया, माँगने पर एक नौकर को पीट दिया। इसीसे छिपता फिरता हूँ, कहीं कोई पहचान न ले! पुलिस जान ले तो दो-दो जुर्म खड़े हो जायँ—एक भाड़ा न चुकाने का, दूसरा मार पीट का। न जाने मैंने उसको कितना पीटा हो, कितनो चोट आई हो?"

मामला अधिक उलझा हुआ दिखाई देने लगा।

मैंने सब काम छोड़कर उसे भेजने के लिये रुपया पैदा करने का विचार किया। पर हाय! दो ही दिनों में मुझे मालूम हो गया कि रुपया जल्दी इकट्ठा कर लेना भी कठिन है। अरे, वह

मरभुखा तो तीन आदमियों की खुराक अकेले ही चट कर जाता। रूस के उत्तरी भाग में अकाल पड़ा था, किसानों के झुंड-के-झुंड काम की खोज में चले आ रहे थे। इसीसे डक में मजदूरी कम हो गई थी। मैं दिनभर में रुपया सवा रुपया पैदा कर लेता था। पर भोजन में ही पंद्रह-सोलह गंडे लग जाते थे।

मेरी इच्छा पहले से ही वहाँ रहने की नहीं थी। मैंने उससे क्रीमिया चलने को कहा—"वहाँ तक पैदल चला जाय, कोई साथी मिल जाय तो तुम चले जाना, नहीं तो मैं तुम्हें स्वयं पहुँचा आऊँगा।"

वह दुखी होकर बूट, हैट और पायजामे को निहारने लगा। लगा कोट झाड़ने और बनने-ठनने। कुछ देर सोचकर उसने गहरी साँस ली और बात मान ली। हम पैदल चल पड़े।

(२)

रास्ते में उसकी बहुत-सी बातों का परिचय मिला। वह देहाती था, ठिगने शरीर का था, चलने नहीं पाता था। पेट भर लेने पर प्रसन्न रहता और भूखे रहने पर मुँह लटका लेता, जानवर की तरह बिगड़ उठता। उसने अपने देश के जीवन का वर्णन किया, जमींदारों की शान-शौकत की चर्चा की। उनके आनंद, ऐशो-आराम और किसानों पर उनके अत्याचार की कथा कही। बातें बड़ी रोचक और मनोहर थीं, पर मेरी तो अश्रद्धा ही बढ़ रही थी।

उसने एक कथा यों कही—"किसी धनी राजकुमार ने एक बार लोगों को निमंत्रित किया। भोज में उत्तमोत्तम सामग्रियाँ

जुटाई गई। जेवनार हो जाने पर वह उन्हें अस्तबल में ले गया। घुड़दौड़ होने लगी। कुमार का घोड़ा बहुत बढ़िया था, पर था मुँहजोर। उसकी चाल और बनावट प्रशंसनीय थी। मैदान में एक किसान ने अपने तेज घोड़े से उसे पिछाड़ दिया, और गर्व से हँसने लगा! कुमार को सबके सामने लज्जित होना पड़ा, त्यौरी चढ़ गई। उसने किसान को ललकारा और कटार से उसका सिर काट डाला, पिस्तौल से उसके घोड़े को गोली मार दी। वह स्वयं पुलिस के सुपुर्द हो गया और राज-दंड भोग लिया।"

वह राजकुमार के साथ सहानुभूति प्रकट कर रहा था, मैंने इसे अनुचित ठहराया।

"संसार में जितने किसान हैं, उतने राजकुमार नहीं"—उसने उपदेश देते हुए कहा—"किसान के लिये राजकुमार को दंड! किसान तो किसान ही है!" उसने मुट्ठी भर बालू ली और कहा—"कुमार एक चमकता हुआ सितारा था!"

मैं उससे वाद-विवाद करने लगा, वह रुष्ट हो गया। भेड़िये की तरह दाँत निकाल लिए।

"भाई, तुम इन बातों को क्या समझो! अच्छा, अपनी जबान बंद रखो।"—वह बिगड़ उठा।

मेरे तर्क उसका विश्वास दूर नहीं कर सकते थे। जो स्प बात थी, उसे वह भद्दी समझता। मेरे तर्क उसके दिमाग में धँस तो कैसे! यदि मैं अपने तर्क की सार्थकता सिद्ध करता तो बिगड़कर कहने लगता—

"वहाँ जाकर रहो, तब न समझो ! तुम्हारी बात मानूँ भी तो कैसे ? तुम्हीं एक ऐसे मिले जो इसे अनुचित बतलाते हो।"

मैं चुप हो गया, समझ लिया कि इससे कोई लाभ नहीं। वह इस प्रकार हारनेवाला नहीं था, उसका उस जीवन में दृढ़ विश्वास था। ऐसा जीवन कानून से भी तो उचित समझा जाता है ! मैं चुप था। वह अपने को जीवन का ज्ञाता समझता था और अपने वचनों को अकाट्य। मुझे चुप देख उसने मग्न होकर फिर वही गाथा छेड़ दी। उसकी कथा में अशिष्ट सौंदर्य था, अग्नि की ज्वाला भरी हुई थी। मेरे लिये उसमें न तो रोचकता थी, न आकर्षण। केवल अश्रद्धा और घृणा बढ़ती जा रही थी। निर्दयता का नग्न नृत्य, द्रव्य की भयंकर उपासना और बल का अमानुषी प्रदर्शन सुनते-सुनते मैं ऊब उठा। उनमें सदाचार और मनुष्यों के प्रति समता के व्यवहार का एकदम अभाव था।

मैंने पूछा—"क्या तुम ईसा का उपदेश जानते हो।"

"हाँ, हाँ, जानता हूँ।"—उसने मटकते हुए उत्तर दिया।

पर परीक्षा लेने पर पता चला कि वह केवल यही जानता है कि कोई ईसा नाम का व्यक्ति हुआ था, जिसने यहूदियों का पक्ष लिया और उन्होंने उसे शूली दे दी। पर उनकी मृत्यु शूली पर नहीं हुई, सीधे स्वर्ग चले गए और संसार के लिये नया विधान किया।

"कौन विधान ?"—मैंने पूछा।

उसने अविश्वास से पूछा—"तुम ईसाई हो क्या ? मैं भी तो

ईसाई हूँ। संसार में बहुत से ईसाई हैं। तुम पूछकर क्या करोगे ?
ईसाई जैसे रहते हैं, सब जानते हैं।

मैं उत्तेजित हो उठा और उसे ईसा के जीवन की बातें बताने लगा। पहले तो उसने ध्यान से सुना, पर पीछे जँभाई लेने लगा।

मैं समझ गया कि उससे कुछ कहना व्यर्थ है। मैं पारस्परिक सहायता, नियम-पालन और सदाचार की महत्ता और गुण ही बतलाता रहा और कुछ नहीं।

"शक्तिशाली स्वयं नियम-स्वरूप है ! उसे सीखने-पढ़ने की आवश्यकता नहीं। वह अंधा होते हुए भी मार्ग ढूँढ़ लेगा।"— उसने हारकर उत्तर दिया।

वह सत्यता का व्यवहार कर रहा था, इससे मेरे हृदय में सम्मान का भाव जगने लगा। अशिष्ट और निर्दय होने के कारण उसके प्रति घृणा भी फूट पड़ती। पर मुझे समझौते की आशा थी, विभेद दूर हो जाने का विश्वास था, इससे वह बढ़ न पाती।

मैंने सीधी-सादी भाषा में बात आरंभ की और मनोयोग-पूर्वक उसका मनन करने लगा। वह ताड़ गया, उसने समझा कि मैं अपने को बड़ा समझता हूँ। इससे वह जोर देकर अपनी बातों की पुष्टि करने लगा। मैं हार मान बैठा। समझ लिया कि इसकी धारणा की दृढ़ दीवाल से टकराकर मेरे सारे तर्क चूर-चूर हो जायँगे।

(३)

क्षितिज के पास पर्वत-माला का मनोहर दृश्य दिखाई दे

लगा। मानों पीत-श्याम मेघ सुकुमारता के साथ लहरा रहे हैं। मेरी भावुकता फूट पड़ी। मैं उस प्रदेश में विहार करने का स्वप्न देखने लगा। राजकुमार उदास होकर कोई-न-कोई तान छेड़ बैठता। सारा रुपया चुक गया था, काम मिलने की भी कोई आशा न थी।

निकट के एक स्थान में काम जोरों के साथ लगा था। उसने भी काम करने की इच्छा प्रकट की, मनसूबे बाँधने लगा—"रुपये कमाने पर नाव लूँगा, उसीपर चढ़कर घर जाऊँगा। वहाँ कितने ही मित्र हैं, तुम्हें भी काम दिला दूँगा। तुम कहीं-न-कहीं निरीक्षक बन जाओगे।" उसने हाथ मारते हुए सोल्लास. कहा—"मैं तुम्हारा प्रबंध करूँगा। क्या तुम इसी तरह कष्ट में पड़े रहोगे? शे! शे! खूब ढालना और खूब खाना। तुम्हारा विवाह भी करा-दूँगा। लड़के-बच्चे होंगे, मौज करना! शे! शे! शे!"

'शे! शे! शे!' के निरंतर प्रयोग से पहले तो मुझे चकपकाहट हुई, फिर रोष आने लगा, उदासीनता ज्ञात होने लगी। रूस में इस प्रकार सुअर के बच्चे बुलाए जाते हैं, पर काकेशिया में यह आनंद, खेद और हर्ष प्रकट करता है। उसकी भड़कीली पोशाक गंदी होने लगी। बूट कई जगह फट गए। हैट और छड़ी तो रास्ते ही में बेंच दी गई। हैट बेंचकर एक पुराने ढंग की टोपी ली गई थी। वह टोपी सिर पर लगाकर उसने पूछा—"क्यों अच्छी लगती है? कैसा जँचता हूँ?"

(४)

हमलोग कोसित्रा पहुँचे ।

मैं आनंदित होकर आगे-आगे चुपचाप चल रहा था । उस समुद्र-वेष्ठित प्रदेश की मनोहरता से आश्चर्यचकित था ।

वह उसासें ले रहा था, रो रहा था और उदास होकर इधर-उधर देखने लगता था । जंगली फलों से किसी प्रकार पेट भर लेता । कभी-कभी तो भूख के मारे जहरीले फल भी खा लेता । अंत में उसने व्यथित होकर कहा—"इनके खाने से तो मेरी आँतें निकली आ रही हैं, चलूँ तो कैसे चलूँ !"

पास में एक पैसा नहीं, काम मिलने का नहीं; भोजन आवे तो कहाँ से ? फलों पर ही निर्वाह करना था, भविष्य के भरोसे चलना था ।

वह मुझको सुस्त कहता, कोसता और बिगड़ता । मैंने वैसा पेटू कभी नहीं देखा था, उसकी विचित्र कहानियाँ ही सुनकर मैं पेट भर लेता । जितना मैं दिनभर में खा सकता था, उतना तो उसका जलपान था । शराब की बोतलों की तो कोई गिनती ही नहीं । दिनभर वह भोजन के ही फेर में रहता, उसीकी चर्चा करता । अपने यहाँ के भोजन और चटनी-अचार के बखान में उसकी जीभ थकती ही न थी । दिनभर ओंठ चाटा करता, आँखें मटकाता रहता, दाँत काढ़कर मुँह चलाने लगता, ला[illegible] घूँटने लगता । मैं तो ऊबकर उसकी ओर देखता ही नहीं, मुँ[illegible] फेर लेता ।

किसी प्रकार एक काम मिला। पेड़ों की सूखी डालें तोड़नी थीं। मुझे बारह आने पेशगी मिले। सब-का-सब जलपान में ही लग गया। ज्यों ही मैं सामान लेकर लौटा, बागवान ने मुझे बुला लिया। मैं अपना सारा भोजन छोड़कर काम पर चला गया। उसने सिरदर्द का बहाना करके जी छुड़ाया। मैं एक घंटे बाद लौटा, तो मेरे लिये एक टुकड़ा भी नहीं! वह पेटू सब कुछ चट कर गया। मैंने उसके इस अनुदार व्यवहार की परवा नहीं की। मुझे अपनी भूल पीछे चलकर मालूम हुई।

मेरी चुप्पी से वह जान-बूझकर लाभ उठाता था। उसका बर्ताव निर्लज्जतापूर्ण ही होता गया। मैं तो काम करता और वह खाता, पीता, मस्त रहता। कोई-न-कोई बहाना ढूँढ़कर वह काम से जी चुराता, और मेरे हाथ जोड़ता। मैं टालस्टाय का अनुयायी तो था नहीं, दिनभर के बाद काम करके थका हुआ लौटता तो बच्चू पड़े-पड़े चारपाई तोड़ते हुए नजर आते! इसपर भी वह छोकड़ा हँसने लगता। मैं मर्माहत हो जाता। इधर उसने भिखमंगी सीख ली थी, इसीसे वह हँसता था। वह मुझे तो घास-भूसा समझता था। पहले उसे भीख माँगने में लज्जा हुई, पर पीछे धड़का खुल गया। एक गाँव में तो वह खुल्लमखुल्ला भीख माँग रहा था। माँगने का ढंग भी अनोखा था, वह दुर्बल बनकर लाठी के सहारे झुक जाता, एक पैर घसीटता चलता, मानों लँगड़ा हो। क्योंकि भले-चंगे को कौन भीख देता है? मैं उसे समझाता, तो बस खीसें काढ़ देता।

(४)

हमलोग कोमिया पहुँचे।

मैं आनंदित होकर आगे-आगे चुपचाप चल रहा था। उस समुद्र-वेष्ठित प्रदेश की मनोहरता से आश्चर्यचकित था।

वह उसासें ले रहा था, रो रहा था और उदास होकर इधर-उधर देखने लगता था। जंगली फलों से किसी प्रकार पेट भर लेता। कभी-कभी तो भूख के मारे जहरीले फल भी खा लेता। अंत में उसने व्यथित होकर कहा—"इनके खाने से तो मेरी आँतें निकली आ रही हैं, चलूँ तो कैसे चलूँ !"

पास में एक पैसा नहीं, काम मिलने का नहीं; भोजन आते तो कहाँ से ? फलों पर ही निर्वाह करना था, भविष्य के भरोसे चलना था।

वह मुझको सुस्त कहता, कोसता और बिगड़ता। मैंने वैसा पेटू कभी नहीं देखा था, उसकी विचित्र कहानियाँ ही सुनकर मैं पेट भर लेता। जितना मैं दिनभर में खा सकता था, उतना तो उसका जलपान था। शराब की बोतलों की तो कोई गिनती ही नहीं। दिनभर वह भोजन के ही फेर में रहता, उसीकी चर्चा करता। अपने यहाँ के भोजन और चटनी-अचार के बखान में उसकी जीभ थकती ही न थी। दिनभर ओंठ चाटा करता, आँखें मटकाता रहता, दाँत काढ़कर मुँह चलाने लगता, लार घूँटने लगता। मैं तो ऊबकर उसकी ओर देखता ही नहीं, मुँह फेर लेता।

किसी प्रकार एक काम मिला। पेड़ों की सूखी डालें तोड़नी थीं। मुझे बारह आने पेशगी मिले। सब-का-सब जलपान में ही लग गया। ज्यों ही मैं सामान लेकर लौटा, बागवान ने मुझे बुला लिया। मैं अपना सारा भोजन छोड़कर काम पर चला गया। उसने सिरदर्द का बहाना करके जी छुड़ाया। मैं एक घंटे बाद लौटा, तो मेरे लिये एक टुकड़ा भी नहीं! वह पेटू सब कुछ चट कर गया। मैंने उसके इस अनुदार व्यवहार की परवा नहीं की। मुझे अपनी भूल पीछे चलकर मालूम हुई।

मेरी चुप्पी से वह जान-बूझकर लाभ उठाता था। उसका बर्ताव निर्लज्जतापूर्ण ही होता गया। मैं तो काम करता और वह खाता, पीता, मस्त रहता। कोई-न-कोई बहाना ढूँढ़कर वह काम से जी चुराता, और मेरे हाथ जोड़ता। मैं टालस्टाय का अनुयायी तो था नहीं, दिनभर के बाद काम करके थका हुआ लौटता तो बच्चू पड़े-पड़े चारपाई तोड़ते हुए नजर आते! इसपर भी वह छोकड़ा हँसने लगता। मैं मर्माहत हो जाता। इधर उसने भिखमंगी सीख ली थी, इसीसे वह हँसता था। वह मुझे तो घास-भूसा समझता था। पहले उसे भीख माँगने में लज्जा हुई, पर पीछे धड़का खुल गया। एक गाँव में तो वह खुल्लमखुल्ला भीख माँग रहा था। माँगने का ढंग भी अनोखा था, वह दुर्बल बनकर लाठी के सहारे झुक जाता, एक पैर घसीटता चलता, मानों लँगड़ा हो। क्योंकि भले-चंगे को कौन भीख देता है? मैं उसे समझाता, तो बस खीसें काढ़ देता।

अभागे भविष्य ! मनुष्य तुझपर आशाओं का ऐसा बोझ लाद देता है कि ज्यों ही तू वर्तमान हुआ तेरा माधुर्य मिटा।

हमने रात में विश्राम किया। समुद्र-तट से चलने का विचार था। रास्ता कुछ चक्कर से था, पर समुद्र की सुहावनी वायु में विचरने की लालसा थी। आग जलाई गई। रात्रि मनोरम थी। नीचे हरिताभ सागर लहरा रहा था, ऊपर नील व्योम की रमणीकता थी। विटपों से मधुर समीर बह रहा था। लताएँ झूम रही थीं, सुधाकर आकाश के सोपान पर चढ़ रहा था, हरे-हरे वृक्षों की छाया पत्थरों पर लोट रही थी। पक्षी चहक रहे थे, कूजना मनोहर और स्वच्छ था। वह संगीत तरंगों की कोमल ध्वनि में घुला जा रहा था। झिल्ली झंकार से निस्तब्धता भंग कर रही थी। आग लहरा रही थी, ज्वालाएँ पीत-लोहित कुसुमों के विशाल गुच्छ-सी जान पड़ती थीं। उनकी छाया चारों ओर नाच रही थी, मानों चंद्रमा की ज्योत्स्ना का प्रसार रोक रही हो। वायु में विचित्र ध्वनि थी। क्षितिज की विशालता सागर की विस्तीर्णता में समा गई थी। आकाश में मेघों का नाम नहीं था। मैं मानों पृथ्वी के सर्वोच्च तुंग पर बैठा अनंत की ओर निहार रहा होऊँ। रजनी की विभूति और सौंदर्य में मादकता थी। मेरी सत्ता वर्णों, ध्वनियों और सुगंधों के समन्वय में लीन हो गई।

आत्मा आश्चर्य से जड़ीभूत थी। मानों पार्श्वदेश में कोई महान् शक्ति विराजमान हो। संजीवनी के आनंदातिरेक से हृदय

सहसा वह जोर से अट्टहास कर उठा—"हा ! हा ! हा ! तुम्हारा चेहरा कितना भद्दा हो गया ! ठीक भेड़ का-सा ! हा ! हा ! हा !"

मानों सहसा भीषण वज्रपात हुआ। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गए।

हँसते-हँसते उसका पेट फूल गया, आँसू निकल पड़े। मैं भी रुदन करना चाहता था, पर कंठ में ज्वाला धधक उठी, घिग्घी बँध गई। मैं आँखें फाड़फाड़कर निहारने लगा, वह हँसते-हँसते लोट पोट हो गया। मैं यह भीषण अपमान न सह सका। सहृदय व्यक्ति इस भीषणता की कल्पना स्वयं कर लें।

"चले जाओ !"—मैं उत्तेजित होकर चिल्ला उठा।

वह चकपका उठा, भयभीत हो गया, पर हँसी न रोक सका। आँखें चकराने लगीं, कपोल फूल गए ? वह फिर हँस पड़ा। मैं उठकर चलता बना।

मैं इधर-उधर मँडराने लगा। मुझमें न तत्परता थी, न चेतना। आत्मा अपकार से व्यथित हो उठी। मैं हृदय से प्रकृति का आलिंगन कर रहा था। कवि-हृदय ही मेरे प्रकृति-प्रेम और पूजन को समझ सकता है। मानों स्वयं प्रकृति शत्रु का रूप धरकर मेरे भावोन्मेष की खिल्ली उड़ा रही हो। मैं प्रकृति और जीवन के विरुद्ध न जाने कितने अपराधों का आरोप करता, पर पैरों की आहट सुनकर रुक गया।

"रोष मत करो !"—उसने पश्चात्तापपूर्वक कहा। उसने

अभागे भविष्य! मनुष्य तुझपर आशाओं का ऐसा बोझ लाद देता है कि ज्यों ही तू वर्तमान हुआ तेरा माधुर्य मिटा।

हमने रात में विश्राम किया। समुद्र-तट से चलने का विचार था। रास्ता कुछ चक्कर से था, पर समुद्र की सुहावनी वायु में विचरने की लालसा थी। आग जलाई गई। रात्रि मनोरम थी। नीचे हरिताभ सागर लहरा रहा था, ऊपर नील व्योम की रमणीकता थी। विटपों से मधुर समीर बह रहा था। लताएँ झूम रही थीं, सुधाकर आकाश के सोपान पर चढ़ रहा था, हरे-हरे वृक्षों की छाया पत्थरों पर लोट रही थी। पक्षी चहक रहे थे, कूजना मनोहर और स्वच्छ था। वह संगीत तरंगों की कोमल ध्वनि में घुला जा रहा था। झिल्ली झंकार से निस्तब्धता भंग कर रही थी। आग लहरा रही थी, ज्वालाएँ पीत-लोहित कुसुमों के विशाल गुच्छ-सी जान पड़ती थीं। उनकी छाया चारों ओर नाच रही थी, मानों चंद्रमा की ज्योत्स्ना का प्रसार रोक रही हो। वायु में विचित्र ध्वनि थी। क्षितिज की विशालता सागर की विस्तीर्णता में समा गई थी। आकाश में मेघों का नाम नहीं था। मैं मानों पृथ्वी के सर्वोच्च तुंग पर बैठा अनंत की ओर निहार रहा होऊँ। रजनी की विभूति और सौंदर्य में मादकता थी। मेरी सत्ता वर्णों, ध्वनियों और सुगंधों के समन्वय में लीन हो गई।

आत्मा आश्चर्य से जड़ीभूत थी। मानों पार्श्वदेश में कोई महान् शक्ति विराजमान हो। संजीवनी के आनंदातिरेक से हृदय उछल पड़ा।

सहसा वह जोर से अट्टहास कर उठा—"हा! हा! हा! तुम्हारा चेहरा कितना भद्दा हो गया! ठीक भेड़ का-सा! हा! हा! हा!"

मानों सहसा भीषण वज्रपात हुआ। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गए।

हँसते-हँसते उसका पेट फूल गया, आँसू निकल पड़े। मैं भी रुदन करना चाहता था, पर कंठ में ज्वाला धधक उठी, घिग्घी बँध गई। मैं आँखें फाड़फाड़कर निहारने लगा, वह हँसते-हँसते लोट पोट हो गया। मैं यह भीषण अपमान न सह सका। सहृदय व्यक्ति उस भीषणता की कल्पना स्वयं कर लें।

"चले जाओ!"—मैं उत्तेजित होकर चिल्ला उठा।

वह चकपका उठा, भयभीत हो गया, पर हँसी न रोक सका। आँखें चकराने लगीं, कपोल फूल गए! वह फिर हँस पड़ा। मैं उठकर चलता बना।

मैं इधर-उधर मँडराने लगा। मुझमें न तत्परता थी, न चेतना। आत्मा अपकार से व्यथित हो उठी। मैं हृदय से प्रकृति का आलिंगन कर रहा था। कवि-हृदय ही मेरे प्रकृति-प्रेम और पूजन को समझ सकता है। मानों स्वयं प्रकृति शत्रों का रूप धरकर मेरे भावोन्मेष की खिल्ली उड़ा रही हो। मैं प्रकृति और जीवन के विरुद्ध न जाने कितने अपराधों का आरोप करता, पर पैरों की आहट सुनकर रुक गया।

"रोष मत करो!"—उसने पश्चात्तापपूर्वक कहा। उसने

मेरे कंधे पर हाथ रखा—"स्तुति कर रहे थे ? मैं क्या जानूँ ! स्वयं तो कभी स्तुति करता नहीं !"

वह शिशु की भाँति कातर हो गया था। उत्तेजित होते हुए भी मैं उसका दयनीय मुख-मंडल ताकने लगा। संभ्रम और आशंका से उसका मुँह बड़ा विचित्र हो गया था।

"मैं तुम्हें न छोड़ूँगा, कभी नहीं !"—उसने जोर से सिर हिलाया।—"मैं जानता, हूँ, आप शांत जीव हैं। कठिन परिश्रम करते हैं, मुझे कभी बाध्य नहीं करते। आश्चर्य इसपर होता है कि आप भेड़ के छौने की तरह भोले हैं।"

उसकी सांत्वना देने और क्षमा माँगने की यही पद्धति थी। मैं क्षमा के अतिरिक्त करता ही क्या ? अतीत के लिये नहीं तो भविष्य के लिये ही सही।

थोड़ी देर में वह सो गया। मैं बगल में बैठकर उसे निहारने लगा। सोते समय बलशाली भी निःसहाय और निर्बल जान पड़ते हैं। उसका मुख-मंडल दयनीय जंतु की भाँति दिखाई पड़ रहा था। मोटे, अधखुले होंठों और तिरछी भौंहों से मुख-मंडल में शैशवपूर्ण कातरता और विस्मय झलक रहा था। साँस शांत थी, नियमित थी, कभी-कभी वह व्यग्रता से बड़बड़ाता हुआ करवटें बद-लने लगता। उसके शब्दों में विनय का भाव था। चारों ओर भीषण शांति का साम्राज्य था। ऐसी ही निस्तब्धता से कुछ देर में लोग पागल हो जाते हैं। यह वस्तुतः गतिशीलता की छाया थी, क्योंकि ध्वनि और गति संगिनी हैं।

तरंगों के कोमल थपेड़े वहाँ तक नहीं पहुँचते थे। हम कंदरा में बैठे थे, ऊपर झाड़ियाँ जमी थीं मानों कोई केशकाय जानवर खड़ा हो। मैं उसे निहारते हुए सोच रहा था—"यह सफर का साथी है, इसे वहीं छोड़ सकता हूँ, पर इससे दूर नहीं हो सकता। इसी का नाम चक्र है। यह जीवन के पीछे पड़ गया है; मुझे यम-द्वार पर ही त्यागेगा।"

(५)

आगे बढ़ने पर हमें बड़ी निराशा हुई। सारा काम बाहर से आए हुए किसानों में पहले ही बँट गया था। कोई चार हजार मनुष्य काम की खोज में बेकार घूम रहे थे। वे चुपचाप वहाँ के कामों को टुकुर-टुकुर ताका करते थे। इधर-उधर अकाल-पीड़ित किसानों के दल-के-दल दिखाई पड़ते। वे काले पड़ गए थे, उदास और कृशित होकर घूम रहे थे। और भी बहुत-से मजूर दल बाँधे भूखे भेड़ियों तरह चक्कर काटा करते थे।

इन भेड़ियों ने हमें भी अकाल-पीड़ित समझा और जितना बन पड़ा, नोचा-खसोटा। शक्रो का नया ओवरकोट उड़ा लिया, मेरा झोला ले भागे। पीछे से उन्होंने समझा कि हम भी मजूर हैं, उन्हींके देश के हैं। तब उन्होंने चीजें लौटा दीं। ये ये संभ्रांत कुल के ही, चाहे गुंडे ही क्यों न रहे हों।

जब कोई काम न मिला तो हम उदास होकर आगे बढ़े।

मेरे साथी ने फिर मुझे तंग नहीं किया। उसका चेहरा वज्र की भाँति कठोर था, उदासीन था। किसीको खाते देखता तो

"दाहिनी ओर!"—दूसरी बार बेड़े के अग्रभाग से शब्द हुआ। ध्वनि अंधकार में लहराने लगी।

"क्या चिल्ला रहे हैं, सब जाना-बूझा है।"—सरजी कड़ककर बोला। अपनी चौड़ी छाती को भिड़ाकर लग्गी दबाई—"मिटिया! जरा जोर से।" मिटिया ने बेड़े के तख्तों को दलदल से पैर द्वारा ठेल दिया। उसने छोटे-छोटे हाथों से लग्गी लगाई और जोर से 'हूँ' करके बेड़े को आगे बढ़ाया।

"दाहिनी ओर कसकर! अलहदियो!"—मालिक फिर चिल्लाया। उसके स्वर में रोष और चिंता दोनों का संमिश्रण था।

"चिल्लाते क्यों हैं?"—सरजी बड़बड़ाने लगा। "साथ में मरकुटहा लड़का कर दिया है, तिनका तोड़ने का तो दम नहीं और हाथ में थमा दी लग्गी। फिर भी डींक रहे हैं। सारी नदी में डींक सुनाई पड़ती है। आपने खुद भारी भूल की। पहले ही कहा था, दूसरा मल्लाह रख लें। अब चिल्ला-चिल्लाकर गला फाड़ते रहिए।"

अंतिम वाक्य उसने बड़े ऊँचे स्वर में तड़पकर कहा था आवाज दूर तक गूँज गई। सरजी चाहता था कि मालिक सुन ले

स्टीमर बेड़े को बगल से सट् से आगे बढ़ गया। पहिये डंडों से जल मथ उठा। तख्ते हिलोर से नीचे-ऊपर होने ल बेड़े में जकड़े हुए बेंत के बेंचों में पानी का थपेड़ा छप्प से ल 'छपाछप्प' शब्द होने लगा। क्षण भर के लिये जान पड़ स्टीमर में बलते हुए लैंप बेड़े और नदी को अपनी ज्वलंत

से तहस-नहस कर डालेंगे। उनका प्रकाश पानी में छनकर मिल-मिला रहा था। जल में एक प्रकाशमयी रेखा काँप उठी। देखते-देखते दृश्य आँखों से ओझल हो गया।

स्टीमर की हिलोर से बेड़ा कभी आगे बढ़ जाता, कभी पीछे। तख्ते नीचे-ऊपर उछलने लगे। मिटिया पानी की हिलोर से डग-मगाने लगा। उसने लग्गी को दृढ़ता से पकड़ा; वह गिरते-गिरते बचा।

"अरे रे रे रे ?"—सरजी हँस पड़ा। "यह कैसा नाच! बाबूजी फिर हाँकने लगेंगे। आकर दो-एक घूँसे जमा देंगे। फिर दूसरा ही नाच नाचने लगोगे। बढ़ा, घाट की ओर!"

सरजी लोहे-सी भुजाओं के बल उछला और गहरे पानी में फसकर लग्गी लगाई। सरजी एक फुर्तीला, लंबा, प्रसन्न-वदन और सपोलु व्यक्ति था। वह नंगे पैर खड़ा था, स्वयं तख्ते की तरह जान पड़ता था। वह सीधे सामने की ओर देख रहा था, बेड़े की चाल को पलट देने के लिये हर समय तैयार था।

"देख, देख! तेरा बाप मार्थो का चुंबन कर रहा है। कैसा राक्षसी जोड़ा है ? न तो लज्जा है और न विचार! मिटिया! तू इनसे अलग क्यों नहीं हो जाता ? इन कुकर्मियों से अलग रहना ही भला है। क्यों ? सुना ?"

"सुनता हूँ!"—मिटिया ने भर्राई हुई आवाज में उत्तर दिया। पर उधर ताका नहीं। अंधकार में उसका पिता दिखाई पड़ रहा था।

"सुनता हूँ—हूँ—हूँ!"—सरजी व्यंग्य करता हुआ हँस पड़ा।

"कहाँ तुम अधकचरी उमर के और कहाँ यह आनंदमय जीवन !"
मिटिया के साथ किए गए दुर्व्यवहार से वह खीझ गया था।
"बुड्ढा कैसा राक्षस है! लड़के की बहू आई, लड़के से उसे छीन
लिया! खूँसट कहीं का!"

मिटिया चुप था। वह मुड़कर पीछे की ओर देखने लगा
पीछे कुहरे की एक दूसरी प्राचीर दिखाई दे रही थी। चारों ओ
बादल घिर आए थे। बेड़ा बड़ी कठिनता से चल रहा था।
अगाध श्याम सलिल में वह स्थिर खड़ा था। आकाश में उड़ते
हुए मेघों के भारी, सघन और काले-काले टुकड़ों ने उसे दबा लिया
था। मार्ग रुका पड़ा था। सरिता अगाध और अप्रकट वात्याचक्र-
सी जान पड़ती थी। चारों ओर से असंख्य पर्वत-माला से घिरी
हुई-सी थी। पर्वतों के शिखर पर कुहरे की पगड़ी-सी बँध गई थी,
वे आकाश की ओर बढ़ते चले जा रहे थे।

जल भी स्थिर होकर जम-सा गया था। मानों वह जड़ीभूत
होकर किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। बेड़े में मंद-मंद 'छप्प-छप्प'
शब्द हो रहा था। उस मंद-ध्वनि में शोक और भय की आकुलता
थी। यामिनी की निस्तब्धता से सन्नाटे की वृद्धि हो रही थी
"अब थोड़ी हवा चले तो अच्छा।"--सरजी बोला। "न, हव
नहीं। तब तो जल गिरने लगेगा।" उसने मन-ही-मन उत्तर
दे लिया। वह हुक्का भर रहा था। सलाई बलो। चिलम च
गई, हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। जब वह दम खींचता तो अग्नि
लाल-लाल प्रकाश से उसके विशाल मुख-मंडल पर एक उ

छिटक जाती। जब प्रकाश धीरे-धीरे ठंढा पड़ जाता तो वह फिर अंधकार में विलीन हो जाता।

"मिटिया !"—उसने पुकारा। वह मुड़ा नहीं, उसकी दृष्टि पीछे ही की ओर लगी हुई थी। मानों उसकी बड़ी-बड़ी आँखें कुछ खोज रही हों।

"अरे, ऐसा क्यों, बता तो सही ?"

"क्या ?"—मिटिया ने अप्रसन्न होकर उत्तर दिया।

"अरे, तेरा ब्याह ? कैसा धोखा हुआ ? क्यों, कैसे ? अरे, तेरी बहू घर आई। फिर ? हा ! हा ! हा !"

"अरे, तुम सबों ने खी-खी खी-खी क्या मचा रखा है ? उधर तो देखो !"—नदी में से धमकाती हुई आवाज सुनाई पड़ी।

"पतित गया कहीं का !"—सरजी ने हर्षित होकर धीरे से कहा। वह फिर उसी रोचक कहानी में लग गया। "मिटिया, आ, बता। जल्दी बोल, बोलता क्यों नहीं ?"

"सरजी, मुझे छेड़ो मत।"—मिटिया जान छुड़ाने लगा। "कहते हैं, मुझसे मत बोलो—जाने दो इस पचड़े को।"

पर वह जानता था कि सरजी मानेगा नहीं। अंत में उसे बताना ही पड़ा—"अजी, उसे घर लाए, मैंने कहा—'माफ़ी, मैं तुम्हारा पति बनने योग्य नहीं। तुम हट्टी-कट्टी हो और मैं दुबला-पतला और रोगी हूँ। ब्याह करने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी। बाबूजी ने ब्याह करने को विवश किया। वे बराबर कहा करते—'ब्याह कर लो। ब्याह कर लो।' मैं कहता मुझे स्त्रियाँ

"कहाँ तुम चमकती उमर के और कहाँ वह आनंदमय जीवन!"
मिठिया के साथ किए गए दुर्व्यवहार से वह खीज गया था।
"तुम्हा कैसा राक्षस है! लड़के को वह आई, लड़के से उसे छीन
लिया! झंझट कहीं का!"

मिठिया चुप था। वह मुड़कर पीछे की ओर देखने लगा।
पीछे कुहरे की एक दूसरी प्राचीर दिखाई दे रही थी। चारों ओर
बादल घिर आए थे। बेड़ा बड़ी कठिनता से चल रहा था।
अगाध श्याम सलिल में वह स्थिर खड़ा था। आकाश में उड़ते
हुए मेघों के भारी, सघन और काले-काले टुकड़ों ने उसे दबा लिया
था। मार्ग रुका पड़ा था। सरिता अगाध और अप्रकट वात्याचक्र-
सी जान पड़ती थी। चारों ओर से असंख्य पर्वत-माला से घिरी
हुई-सी थी। पर्वतों के शिखर पर कुहरे की पगड़ी-सी बँध गई थी,
वे आकाश की ओर बढ़ते चले जा रहे थे।

जल भी स्थिर होकर जम-सा गया था। मानों वह जड़ीभूत
होकर किसीकी प्रतीक्षा कर रहा हो। बेड़े में मंद-मंद 'छप्प-छप्प'
शब्द हो रहा था। उस मंद-ध्वनि में शोक और भय की आकुलता
थी। यामिनी की निस्तब्धता से सन्नाटे की वृद्धि हो रही थी।
"अब थोड़ी हवा चले तो अच्छा।"--सरजी बोला। "न, हवा
नहीं। तब तो जल गिरने लगेगा।" उसने मन-ही-मन उत्तर भी
दे लिया। वह हुक्का भर रहा था। सलाई बली। चिलम चढ़
हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। जब वह दम खींचता तो अग्नि के
प्रकाश से उसके विशाल मुख-मंडल पर एक ज्योति

छिटक जाती। जब प्रकाश धीरे-धीरे ठंढा पड़ जाता तो वह फिर अंधकार में विलीन हो जाता।

"मिटिया !"—उसने पुकारा। वह मुड़ा नहीं, उसकी दृष्टि पीछे ही की ओर लगी हुई थी। मानों उसकी बड़ी-बड़ी आँखें कुछ खोज रही हों।

"अरे, ऐसा क्यों, बता तो सही ?"

"क्या ?"—मिटिया ने अप्रसन्न होकर उत्तर दिया।

"अरे, तेरा ब्याह ? कैसा धोखा हुआ ? क्यों, कैसे ? अरे, तेरी बहू घर आई। फिर ? हा ! हा ! हा !"

"अरे, तुम सबों ने खी-खी खी-खी क्या मचा रखा है ? उधर तो देखो !"—नदी में से धमकाती हुई आवाज सुनाई पड़ी।

"पतित गधा कहीं का !"—सरजी ने हर्षित होकर धीरे से कहा। वह फिर उसी रोचक कहानी में लग गया। "मिटिया, आ, बता। जल्दी बोल, बोलता क्यों नहीं ?"

"सरजी, मुझे छेड़ो मत।"—मिटिया जान छुड़ाने लगा। "कहते हैं, मुझसे मत बोलो—जाने दो इस पचड़े को।"

पर वह जानता था कि सरजी मानेगा नहीं। अंत में उसे बताना ही पड़ा—"अजी, उसे घर लाए, मैंने कहा—'मार्फो, मैं तुम्हारा पति बनने योग्य नहीं। तुम हट्टी-कट्टी हो और मैं दुबला-पतला और रोगी हूँ। ब्याह करने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी। बाबूजी ने ब्याह करने को विवश किया। वे बराबर कहा करते—'ब्याह कर लो। ब्याह कर लो।' मैं कहता मुझे स्त्रियाँ

नहीं रुचतीं और मार्का तो बहुत ही हट्टी-कट्टी है।' मुझे अब कुछ नहीं करना है। समझा ? मेरे हृदय में तो भारी खलभली हो रही है। यह घोर पातक है। रही संतति, उसके लिये तो ईश्वर के सामने उत्तर देना ही पड़ेगा।"

"हृदय में खलभली होती है !"—सरजी जोर से बोला और हँस पड़ा। "भला मार्का ने क्या कहा ? वह भी सुनूँ ?"

"उसने कहा—'अब मैं क्या करूँ ?' वह रो उठी। 'मेरा दोष क्या ? क्या मैं कुरूपा हूँ ?' सरजी, वह बड़ी निर्लज्ज और दुष्टा है। 'क्या अपनी भरी जवानी लेकर ससुर के पास रहूँ ?' मैंने उत्तर दिया—'तुम्हारी जो इच्छा हो करो, मैं आत्मा के विरुद्ध नहीं चल सकता। यदि तुम्हें प्यार करता होता तब न ? मैं वैसा ही हूँ, कोई परिवर्तन नहीं; फिर यह हो कैसे ? बाबूजी ऐसा करना घोर पातक समझते हैं। हम लोग क्या जानवर हैं ?' वह रो पड़ी—'तुमने जीवन की उमंगों का सत्यानास कर डाला।' मैं समवेदना प्रकट करने लगा।—'कुछ नहीं' मैंने कहा—'सब ठीक हो जायगा।' मैं बोलता गया—'तुम किसी मठ में जा सकती हो ?' यह सुनते ही वह मुझे गालियाँ देने लगी—'मिटिया तुम बड़े लुच्चे हो। दगाबाज ! कायर ! हिजड़ा कहीं का !"

"अजी, मैं बड़ा भाग्यवान हूँ।"—सरजी बड़ी प्रसन्नता से बोल उठा। "तो तूने सीधे मठ में जाने को कहा ?"

"हाँ, सीधे।"—मिटिया ने सिधाई से कहा।

"उसने तुझे हिजड़ा कहा ?"—सरजी ने स्वर ऊँचा किया।

"हाँ, मेरा घोर अपमान किया।"

"ठीक कह रही थी। सचमुच, ठीक कहती थी। तेरे मुँह में ऐसा ही थप्पड़ लगना चाहिए था।'—सरजी ने अपना स्वर बदल दिया। वह कठोरता, पर विचारशीलता के साथ बोला—"क्या तुझे नीति-विरुद्ध चलने का अधिकार है? पर तू उसके विरुद्ध जा रहा था। संसार में सभी पदार्थों के प्रयोग का ढंग होता है। उसके विरुद्ध चलना मूर्खता है। तुझे उनके बारे में तर्क-वितर्क करने का भी अधिकार नहीं। तू ने किया क्या? दिमाग में पागलपन समा गया। सठ, छिः! बावला, मूर्ख कहीं का! युवती क्या चाहती है? तेरा मठ! तू न इधर का रहा न उधर का। न घर का न घाट का। उसका काम तो चल गया। बुड्ढे के साथ मौज करने लगी। तूने ही बुड्ढे को पाप में डाला। गिन तो, कितने नीति-विरुद्ध कर्म किए? चतुर बनने चले थे न!"

"नीति-विरोध तो सरजी, आत्मा के विरुद्ध चलने में है। संसार में सबके लिये एक ही विधान है। जो कार्य आत्मा के विरुद्ध हो उसे न करे। बस, बुराई से बचे रहोगे।"—मिटिया ने उत्तर दिया। वह धीरे-धीरे बोल रहा था, नतमस्तक था। वह झगड़ा मिटाने के फेर में था।

"पर, तूने बुरा किया।"—सरजी ने तीखे पड़कर उत्तर दिया। "आत्मा में बहुत सी वस्तुएँ हैं। कुछ का निग्रह आवश्यक है। आत्मा! तू पहले इसे समझ तो ले फिर—"

"न, सरजी, ऐसा नहीं।"—मिटिया ने उत्तर दिया। वह गर्म

पड़ गया था, उत्तेजित ज्ञात होता था। "भाई, आत्मा वैसी ही स्वच्छ है, जैसी ओस की बूँद। हृदय की अत्यंत निचली तह से वह बोलती है, उसका शब्द सुनना कठिन है। यदि उसपर ध्यान दें तो कभी भूल में नहीं पड़ सकते। उसका आदेश माननेवाला ईश्वर का अनुगमन करता है। ईश्वर का निवास आत्मा में ही है। इसीसे उसमें उसकी नीति रहती है। ईश्वर ने आत्मा की सृष्टि की है और उसे मानव को प्रदान किया है। हमें इसे समझ लेना भर सीखना है। समझने में तो कुछ खर्च नहीं करना पड़ता!"

"अरे राक्षसो! होश सम्हाल के उधर देखो!"—आवाज़ बेड़े के अगले भाग से बिजली की तरह कड़की और नदी के बहाव की ओर फैलती चली गई। कड़क से ज्ञात होता था कि बोलनेवाला हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी और आह्लादित है। वह अत्यंत शक्तिशाली और चैतन्य व्यक्ति है। मल्लाहों को आदेश करने के लिये वह नहीं तड़पा था, वरन् उसमें जीवन था, शक्ति थी। ये दोनों ही तेजी से निकलना चाहती थीं। इसीसे ध्वनि में बिजली की-सी कड़क थी, वेग था।

"कलमुँहें का चिल्लाना तो सुन!"—सरजी ने हर्ष से कहा। वह सामने की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था और मुस कुराता जाता था।—"देखा! दोनों कबूतर के जोड़े की भाँति किलोल कर रहे हैं। मुँह सटा रहे हैं, लिपट रहे हैं। मिटिया, क्या तुझे डाह नहीं होती?"

मिटिया अगले डाँड़ों की गति उदास भाव से निरखने लगा।

दो मूर्त्तियाँ उन्हें चला रही थीं, वे सोते-सोते कभी आगे झुक जातीं, कभी पीछे। जब वे एक दूसरे से छू जातीं तो अंधकार राशीभूत हो जाता था।

"तो तू डाह नहीं करता ?"—सरजी ने दुहराया।

"हमें इससे प्रयोजन ? वे पाप करते हैं, फल भी वे ही भोगेंगे।"—मिटिया ने शांत भाव से उत्तर दिया।

"हूँ"—सरजी व्यंग्य से बोला। उसने अपना हुक्का भरा।

एक बार अंधकार में फिर लाल-लाल ज्योति फूट पड़ी। रात अँधेरी होती जा रही थी। काले मेघ बढ़ी हुई सरिता की ओर उतरे चले आ रहे थे।

"तुझे यह मनोहर मूर्त्ति मिली कहाँ ? क्या स्वतः तेरे पास आ गई ? तू तो अपने बाप को भी नहीं पड़ा। तेरा बाप कैसा छैला बना है ? उसे देख तो! बावन बरस का बुड्ढा है, पर देख कैसी हृदयहारिणी रमणी उसके पास है! कैसी रूपवती है! आज तक ऐसी कोई नारी नहीं जन्मी। निस्संदेह वह उसे प्यार करती है, चाहती है। तेरे बाप के हाथ में बाजी है, पौ-बारह है। काम करते समय उसकी छटा दर्शनीय होती है। वह धनी भी तो है! और देख, सम्मान भी कितना है! भाल-पट्ट भी विधाता ने कैसा गढ़ा है! हा, हा, और तू न तो अपने बाप को पड़ा, न माँ को। मिटिया, यदि माँ जीती होती तो तेरा बाप क्या करता ? बता सकते हो ? हँसने लायक बात होती! ओह, हम देखते यह

कैसा उन्हें ठीक करती है। तेरी माँ बड़ी प्रवीण थी। सहृदय थी, सचमुच दोनों का जोड़ा बड़ा बढ़िया था।"

मिटिया लग्गी पर ओठँगा था। पानी को निहार रहा था; चुप था।

सरजी ने बात बंद कर दी। बेड़े के अगले भाग में रमणी की मधुर खिलखिलाहट सुन पड़ी। तदुपरांत पुरुष का ठहाका सुनाई पड़ा। दोनों के आकार कुहरे से ढके हुए थे। सरजी उत्सुकता से देख रहा था। पर वे अदृष्ट-से थे। पुरुष लंबे डीलडौल का था। टाँगें फैलाए खड़ा था। उसके हाथ में लग्गी थी। वह नाटे कद-वाली रमणी की ओर झुका हुआ था। रमणी भी हाथ में लग्गी लिए थी और उससे हटकर कुछ दूर खड़ी थी। उसने पुरुष को तर्जनी अँगुली से गुदगुदाया और उल्लसित होकर खिल-खिला पड़ी।

सरजी ने गहरी साँस ली और मुँह फेर लिया। कुछ क्षण तक चुप रहा; फिर बोला—"कैसा घपला है! पर दोनों कैसे चुहल-बाज़ हैं! कैसा भला लगता है! मुझे ऐसी ही चीज क्यों नहीं मिलती! मैं, मैं तो कुटुंबहीन की तरह फेंका पड़ा हूँ। मैं तो ऐसी रमणी को कभी न त्यागता। मेरी भुजाएँ सदा उसकी गर्दन में पड़ी रहतीं। पर कभी ऐसा सौभाग्य ही न मिला। रमणियाँ—वे तो सूखी घास से रूखे बाल नहीं पसंद करतीं। न, बड़ी भावुक रमणी है, हाँ—हाँ, प्रच्छन्न रूप में चुड़ैल है। जीवन का आनंद लूटना चाहती है। मिटिया, क्या तू सो गया?"

"न"—मिटिया ने शांत भाव से उत्तर दिया।

"अरे, तू अपनी जिंदगी कैसे काटेगा? सचमुच, तेरा जीवन स्तंभ की भाँति शून्य है। पर जीवन तो कठोरतर है। तू जाएगा कहाँ? तू अपरिचित लोगों में काम-काज भी तो नहीं कर सकता। तू है भी बड़ा भद्दा! जो अपने पैरों पर नहीं खड़ा हो सकता, उसका जीवन वृथा है। संसारी जीवों के दाँत और पंजे होते हैं। वे तुम-पर आक्रमण करने लगेंगे। क्या तू अपनी रक्षा कर लेगा? क्या करेगा? इन्हें कोसेगा? अरे दईमारे, तू जायगा कहाँ?"

"मैं!"—मिटिया ने कहा। वह सहसा उठ खड़ा हुआ।—"मैं भाग जाऊँगा। जाड़े में काकेसस के पहाड़ों में चला जाऊँगा। बस, झगड़े का अंत हो जायगा। हे भगवन्! यदि किसी प्रकार छुटकारा हो जाता! ऐ अनात्मवादियो! अनीश्वरवादी मनुष्यो! तुमसे दूर रहने की ही अभिलाषा है। तुम क्यों जीवन धारण करते हो? तुम्हारा ईश्वर कहाँ है? बस, नाम-ही-नाम! क्या तुम्हीं ईसा के साथ रहनेवाले हो? भेड़िये हो, सचमुच भेड़िये हो! वहाँ और लोग भी हैं, उनकी आत्मा में ईसा रहता है। उनके हृदय में स्नेह है, संसार के कल्याण की लालसा है। पर तुम, तुम पशु हो, मल उगला करते हो। उन लोगों को मैंने देखा है। वे पुकार रहे हैं, मुझे वहाँ जाना है। उन्होंने मुझे पवित्र पुस्तक (बाइबिल) दी है। कहा—'पढ़, ईश्वर के बंदे इसे पढ़; प्यारे बंधु, सत्य वचनों को पढ़।' मैंने पढ़ा, ईश्वर के वचन पढ़कर आत्मा में नई ज्योति फूट पड़ी। मैं वहीं जाऊँगा। हिंसक भेड़ियो! तुम्हें त्याग

संचार था, चैतन्यता थी। वहाँ की हँसी, उद्‌गार, ध्वनि निशा की निस्तब्धता को प्रतिद्वंद्विता कर रही थीं। उनमें वासंती जीवन की उल्लासपूर्ण अभिलाषाएँ उमड़ी पड़ रही थीं।

"मिटिया, तू उसे बुड्ढे से छीन सकता है? उधर तो देख!"—सरजी बोला। अब वह सन्नाटे को नहीं सह सकता था। उधर मिटिया की लग्गी जल में यों ही आगे-पीछे चल रही थी।

मिटिया ने ललाट का पसीना पोंछा और चुपचाप खड़ा हो गया। वह लग्गी के सहारे झुका हुआ था, हाँफ रहा था।

"आज रात में कुछ स्टीमर आनेवाले हैं।"—सरजी बोला। "अभी तक केवल एक ही दिखाई पड़ा है।" जब उसने देखा कि मिटिया उत्तर देने का प्रयास भी नहीं कर रहा है तो स्वयं ही उत्तर देने लगा।—"अभी ऋतु आरंभ हुई है, हम शीघ्र ही वहाँ पहुँच जायेंगे। नदी बड़े वेग से बह रही है। तुम ऐसे क्यों खड़े हो? क्या रुष्ट हो गए? देख, मिटिया देख!"

"क्या है?"—मिटिया खीजकर चिल्ला उठा।

"कुछ नहीं, विचित्र जीव हो। बोलते क्यों नहीं? जब देखो सोचते ही रहते हो। यह बहुत बुरा है। तू तो बड़ा बुद्धिमान है न! अपने को मूर्ख समझना हो नहीं! हा! हा!"

सरजी अपनी गुरुता से तुष्ट था, क्षणभर चुप रहकर वह एक गीत गाने लगा। गाने के बाद फिर वही चर्चा छेड़ दी!

"सोचना? यह कामकाजी मनुष्य का काम नहीं। अपने आप को देख, कभी नहीं सोचता। तेरी बहू को प्यार करता है।

जीवन का आनंद लूटता है। दोनों तुझपर हँसते हैं। मूर्ख कहीं का! उनकी बातें तो सुन! मार्का अवश्य गर्भवती हो चुकी है। डर मत, लड़का तुझे नहीं पड़ेगा। वह बड़ा मनोहर होगा। सीलान को पड़ेगा। पर कहा जायगा तेरा ही लड़का! हा! हा! हा! तुझे 'बाबू' कहेगा। पर तू उसका भाई होगा। कैसा मजा है! छी! छी! कैसा नारकीय कुटुंब है। क्यों, सच है न मिटिया?"

"सरजी!"—वह सिसकने लगा।—"ईश्वर के नाम पर हाथ जोड़ता हूँ, मेरी आत्मा के टुकड़े-टुकड़े मत करो। जलाओ मत! छोड़ दो, चुप रहो! ईश्वर के नाम पर, बोलो मत। तंग मत करो। तंग करोगे तो नदी में कूद पड़ूँगा। तुम्हें पाप का भागी होना पड़ेगा। विवश मत करो। ईश्वर के लिये मुझे छोड़ दो।"

कर्कश स्वर ने रात्रि की निस्तब्धता भंग कर दी। मिटिया जोर से सिसक रहा था, तख्ते पर गिर पड़ा, मानों उसपर बिजली गिर पड़ी हो।

"आओ! आओ!"—सरजी ने चिंतित होकर कहा। मिटिया तख्ते पर छटपटा रहा था। "बड़े विचित्र जीव हो! ऐसा ही था तो पहले ही कह देते, यह अच्छा नहीं—"

"तुम रास्ते भर तंग करते रहे, क्या मैं तुम्हारा शत्रु हूँ?"—मिटिया फिर सिसकने लगा।

"अजीब लड़के हो! पागल हो गए हो क्या?"—सरजी ने घबड़ाकर कहा—"मैं क्या जानूँ? मैंने कुछ करने को तो कहा नहीं!"

"सुनो, मैं इसे भूल जाना चाहता हूँ, सदा के लिये। साथ ही लज्जा भी—वेदना भी—सब कुछ। तुम बड़े निर्दय हो! मैं बाहर चला जाऊँगा—वहीं रहूँगा। अब नहीं सह सकता।"

"हाँ, हाँ, खुशी से जाओ।"—सरजी ने चिल्लाकर कहा। यह उद्गार भीषण था, अभिशाप से युक्त था। वह भय से काँप उठा। जो भीषण नाटक सामने खेला जा रहा था, उससे वह डर गया। पर नाटक का रहस्य जानने को विवश था।

"अरे! ओ! कब से पुकार रहा हूँ। तुम सब क्या बहरे हो गए!"—सीलान का कर्कश स्वर गूँज उठा।—"वहाँ क्या बड़बड़ा रहे हो? सुना?"

सीलान को चिल्लाने में मानों आनंद आता हो। शक्ति और बल से लदी हुई उस गंभीर ध्वनि ने निस्तब्धता भंग कर दी। एक के पीछे दूसरी ध्वनि गूँज रही थी। आर्द्र वायु में उष्णता बिखर जाती थी। गिटिया की छोटो-सी दुर्बल मूर्ति पिसी जा रही थी। वह उठकर फिर लग्गी चलाने लगा। सरजी ने जोर से चिल्लाकर उत्तर दिया और मन-ही-मन मालिक को कोसने लगा।

दोनों के स्वरों से वायु फटी जा रही थी। डरकर रात्रि की निस्तब्धता सिकुड़ने लगी। दोनों स्वर एक में मिल गए। बाजे की सी ध्वनि होने लगी, एक बार फिर कर्कशता आई। अंत में, वे वायु में लहराते हुए क्रमशः मंद पड़ गए।

चारों ओर फिर निस्तब्धता छा गई।

मेघों के रंध्र से होकर नीले जल पर जो सुवर्ण-रेखा पड़ रही

थी, वह क्षणभर झिलमिलाकर लुप्त हो गई, कुहरे की श्यामता में मिल गई।

बेड़ा अंधकार में निस्तब्ध बहाव की ओर चला जा रहा था।

(२)

सीलान लाल कमीज पहने आगे खड़ा था। गला खुला था, पुष्ट ग्रीवा झलक रही थी। उसकी बालदार छाती वज्र की तरह कठोर थी। ललाट पर भूरे केश बिखरे हुए थे। काली-काली चमकीली आँखें हँस रही थीं। बाहों को टेहुनी तक समेट लिया था। हाथ में लग्गी थामते ही नसें उभड़ आतीं। वह आगे की ओर झुका हुआ सामने ध्यान से देख रहा था। मार्का कुछ दूर खड़ी थी। अपनी मतवाली मुसकान से प्रेमी को निहार रही थी। दोनों मौन थे, कुछ सोच रहे थे। सीलान की दृष्टि दूरस्थित कोई दृश्य देख रही थी और मार्का उसके मुख-मंडल की चेष्टाएँ निरख रही थी।

"किसी मछुए की आग है?"—उसने मुँह फेरकर कहा।

"हाँ प्यारे! हम लोग ठीक मार्ग पर हैं।"—उसने दम साधकर कहा और कसकर लग्गी लगाई।

"तुम क्यों थकती हो?"—उसने मार्का को देखकर कहा।

मार्का लग्गी लिए बड़ी मनोहर चेष्टाएँ कर रही थी।

वह सुघड़ और स्थूल थी। आँखें नीली-नीली और चमकीली थीं, गाल गुलाबी थे, पैर नंगे थे। मटमैला झीना कोट देह में सट गया था, जिससे अंग-अंग बाहर की ओर झाँक रहे थे।

उसने इधर मुँह फेरकर मुसकुराते हुए कहा—"मेरा इतना ध्यान ! मुझे कोई कष्ट नहीं ।"

"इतना ध्यान ! ध्यान तो नहीं, चुंबन अवश्य करता हूँ ।"—उसने उछलते हुए कहा ।

"यह ठीक नहीं !"—उसने मटककर उत्तर दिया । दोनों चुप हो गए, एक-दूसरे को अभिलषित नेत्रों से निहारने लगे ।

बेड़े के नीचे सलिल संगीत-ध्वनि कर रहा था । तट पर, बहुत दूर, कोयल बोल रही थी । बेड़ा धीरे-धीरे बह रहा था, सीधे चला जा रहा था । अंधकार कम हो गया, मेघ छँट गए, उनकी श्यामता दूर हो गई ।

"क्यों, जानते हो, वे क्या बड़बड़ा रहे थे ? मैं जानती हूँ, मिटिया मेरे बारे में अपना दुखड़ा रो रहा था, अभी वहीं रो उठा था । सरजी हमें कोस रहा था ।"

प्रत्युत्तर की आशा से वह सीलान का मुख ताकने लगी । इसे सुनते ही सीलान का चेहरा उग्र और भयानक हो गया ।

"अच्छा !"—उसने कहा ।

"हाँ-हाँ"

"यही था तो कहने की क्या आवश्यकता थी !"

"रुष्ट क्यों होते हो ?"

"तुमसे रुष्ट ? होना चाहता हूँ, पर हो नहीं सकता ।"

"तुम और किसी को प्यार करते हो ?"—उसने कहा और लालसा से निहारने लगी ।

"हाथे के साथ करती हो ?"—सीलान ने जोर देकर कहा। उसने पुष्ट भुजाएँ पसार दीं—"अच्छा आओ, मुझे अधिक मत सताओ।"

उसने देह समेट ली। फिर लालायित नेत्रों से निहारने लगी।

"क्या खेना छोड़ दें ?"—उसने कान में कहा और उसके उत्तप्त कपोलों को चूम लिया।

"बस, वे देख लेंगे !"—वह सिर झटककर छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। पर, सीलान ने उसे एक हाथ से कसकर दाब लिया। उसके दूसरे हाथ में डाँड़ था।

"देख लेंगे ! देख लेने दो। थू ! पाप कर रहा हूँ, ठीक ! ईश्वर को इसका उत्तर भी मुझी को देना होगा। तुम उसकी नहीं थीं, अपने लिये स्वच्छंद थीं, तुम्हें इसका अधिकार था। वह भुगत रहा है, भुगते ! और मैं, मैं क्या सुखी हूँ ? मुझे अपना भी ज्ञान है। ईश्वर के समक्ष यह घोर पातक है ! महापाप है ! सब जानते हुए मैंने ऐसा किया, मैं विवश था ! अब तो प्रेम कर ही लिया; चाहे जो हो ! हाय ! यदि विवाह करने में एक महीने और रुक जाता, तो मैं ही तुमसे गाँठ जोड़ता, मिटिया की माँ मर ही चुकी थी ! केवल नीति का पालन होता। बिना संकोच, बिना पातक मैं तुम्हारा पति होता। इसी भूल से मेरा जीवन घुला जा रहा है। मैं समय से पहले ही बुड्ढा हुआ जा रहा हूँ।"

सीलान दृढ़ता और शांतिपूर्वक बोल रहा था, चेहरे से आत्म-

विश्वास झलक रहा था। मानों वह प्रेमाधिकार के लिये प्राण-पण से तैयार हो।

"अजी, जो हुआ ठीक ही हुआ! अब इस बारे में मुँह मत खोलना, यही प्रार्थना है।"—मार्को ने कहा। उसने सीलान का हाथ हटा दिया और डाँड़ चलाने लगे।

सीलान का डाँड़ा तेजी से चल रहा था। जान पड़ता, मानों वह छाती के बोझ को हलका कर रहा है। उसके मनोहर मुख-मंडल पर अपूर्व कांति थी।

धीरे-धीरे पौ फट गया। मेघों की सघनता दूर हो गई, वे इधर-उधर फैल गए, मानों सूर्यातप के स्वागत में स्थान छोड़कर हट गए हों। सरिता के जल का धरातल स्थिर हो गया था, तलवार की धार की तरह दमक रहा था।

"कुछ दिन पहले उसने कहा था—'पिता जी, यह मेरे और आपके दोनों के लिये लज्जा की बात है, इस कुकर्म को त्याग दें।' उसका लक्ष्य तुम्हीं थीं—यह कहकर वह मुसकुराने लगा। फिर बोला—'सुमार्ग पर चलो।' मैंने कहा—'प्यारे बच्चे, अगर जान प्यारी है तो निकल जा। नहीं तो चिथड़े की तरह चीर डालूँगा। तेरे गुणों का कहीं पता तक न लगेगा। मुझे इसीका खेद है कि मैं तेरा पिता हूँ। दुष्ट कहीं का!' वह काँप उठा। 'पिता जी'—वह बोला—'क्या झूठ कह रहा हूँ?' 'तू'—मैंने कहा—'पाजी! कुत्ता! मेरा रास्ता रोकेगा? अपने पैरों तो खड़ा नहीं हो सकता। अभागे! मुर्दे! यदि तू दुर्बल न होता तो तेरी

बोटी-बोटी कटवा देता ! तेरी रोनी सूरत पर दया आ जाती है।' वह रो उठा। मार्का, ऐसे अपमान से मनुष्य बेकाम हो जाता है। दूसरा होता तो इस बंधन को तुरत काट फेंकता और भाग जाता। हम लोग तो इसमें फँसे ही हैं, दूसरों का गला भी फाँसते रहते हैं।'

"इसका तात्पर्य ?"—मार्का ने डरकर पूछा, क्योंकि उसने उग्र रूप धारण कर लिया था।

"कुछ नहीं ! उसे जान देनी है ! वह मर भी जाय तो अच्छा, रास्ता तो साफ हो जायगा ! तुम्हारे नैहरवालों को सारी जमीन सौंप दूँगा। बस, उनका मुँह बंद। फिर दोनों कहीं बाहर चलकर चैन की वंशी बजावेंगे। कोई पूछेगा—'यह कौन है ?' कह दूँगा—'मेरी प्रेमिका।' अदालत में इकरारनामा लिखवा लेंगे। कहीं दूकान खोल लेंगे और मौज से दिन बितावेंगे। रहा ईश्वर ! उसके सामने पाप स्वीकार कर लेंगे। यहाँ के लोगों को तो कोई बाधा न होगी ! मैं अपना संतप्त हृदय तो शीतल कर सकूँगा ! क्यों ? ठीक है न ?"

"हाँ !"—कहकर उसने गहरी साँस ली, आँखें बंद कर लीं, ध्यान-मग्न हो गई।

कुछ देर तक दोनों मौन रहे, केवल जल 'हर-हर' कर रहा था।

"वह रोगी है, जल्द मरेगा।"—कुछ ठहरकर सोलान बोला।

"ईश्वर करे, जल्दी मरे।"—मार्का ने कहा। मानों ईश्वर से

वसंतकालीन सूर्य की किरणें मेघों का पटल फाड़कर निकल ईं। उनके स्पर्श से जल सुनहला, विविध वर्ण का हो गया। वायु निःश्वास ली, प्रकृति हिल उठी, चंचल हो गई, मुसकुराने लगी। घों के अंतराल से नील व्योम आतप-तप्त सलिल पर हँस रहा ा। वेड़ा बढ़ा जा रहा था। मेघ पीछे छूट गए। वे सघन एवं शाल राशि के रूप में मंथर गति से एकत्र होकर प्रदीप्त सरिता े ऊपर स्वप्न के चित्रपटों की भाँति घूम रहे थे। मानों वासंती ूर्य-रश्मियों से बचने का मार्ग ढूँढ़ रहे हों। सूर्य सहर्ष अपने प्रताप द्वारा इन शारदीय झंझा के प्रतीकों की प्रतिद्वंद्विता कर रहा था।

आकाश क्रमशः स्वच्छ और प्रदीप्त होता जा रहा था। बाल-वि सरिता की स्वर्ण-वर्ण तरंगों से ऊपर उठता हुआ रमणीयता और मनोहरता का संचार कर रहा था। वह उत्तप्त तो नहीं था, पर वासंती प्रभात के संयोग से देदीप्यमान था, दमक रहा था। धीरे-धीरे वह स्वच्छ गगन के सोपानों से चढ़कर ऊपर पहुँच गया। दाहिनी ओर सरिता का उत्तुंग तट हरे-भरे विपिनों से विभूषित था। बाई ओर नीलम-से हरे-हरे खेतों में ओस की बूँदें हीरे की भाँति चमक रही थीं। वायु पृथ्वी का सोंधा परिमल वहन कर रही थी, देवदारु के विपिनों की हृदयहारिणी सुगंध से लद जाने पर उसकी गति मंद पड़ जाती।

सरजी और मिटिया दोनों खड़े थे। मानों डाँड़ों में जड़ीभूत हो गए हों। उनके मुख-मंडल में भावनाओं का संग्राम छिड़ा हुआ था।

हल के बीच वह बेचारा अकेला चुपचाप इधर-उधर टहला करता। न तो उसका ध्यान कहीं पर डँटता, न कोई उसीपर ध्यान देता।

चौथे दिन भोजन के समय उसका सामना हुआ। मैंने जैसे हो सके उसका परिचय प्राप्त करने का निश्चय किया। मैं भोजन की सामग्री लेकर सामने बैठ गया। खाना आरंभ कर दिया। मैं उसे निहार रहा था और बातचीत करने का अवसर ढूँढ़ रहा था।

वह सिर झुकाए खड़ा था, इधर-उधर देख रहा था। उँगलियों से छड़ी को वंशी की तरह बजा रहा था। मैं रंग-विरंगे कपड़े पहने था, कंधे पर बिल्ला लगा था। कोयले और धूल से सारी पोशाक काली पड़ गई थी। भड़कीली पोशाकवालों से बात करने की हिम्मत ही न थी। पर आश्चर्य! वह बराबर मुझे ही ताक रहा था। आँखों में दिव्य चमक थी, लोलुपता और अप्रसन्नता थी। मुझे जान पड़ा, वह भूखा है। इधर-उधर देखकर मैंने धीमें स्वर में पूछा—"क्या आप भूखे हैं ?"

वह सचमुच भूखा था। उसने इधर-उधर देखकर मुँह फैलाया, दाँत निकाल दिए। तदनंतर मैंने आधी दाल और एक टुकड़ा रोटी उसे दी। मेरे हाथ से वह इन्हें लेकर माल के ढेर के पीछे जा बैठा। कभी-कभी सिर दिखाई पड़ जाता, काली-काली भौंहें चमक जातीं। उसके मुँह पर मुसकान फूट पड़ी। वह पलक भी भाँज रहा था और मुँह भी चलाता जाता था।

मैंने संकेत से उसे रुकने को कहा और दौड़कर मांस ले आया। मैं वहीं खड़ा हो गया। अब पूरी आड़ हो गई, वह

दिखाई नहीं पड़ सकता था। वह इधर-उधर देखकर भकोसने लगता, मानों कोई खाना छीनने चला आ रहा हो। मेरे दूर हट जाने पर वह शांति से खाने लगा, पर भकोसना कम नहीं हुआ। बस भुक्खड़ को निरखते-निरखते मैं ऊब उठा, पीठ फेरकर बैठ गया।

"धन्यवाद! अनेक धन्यवाद!"—उसने पहले मेरे कंधे पर हाथ रखा, फिर प्रेम से हाथ मिलाया।

कुछ देर बाद उसने अपना परिचय दिया। वह राजकुमार था, उसका नाम शक्रो था। वह एक धनाढ्य जमींदार का एक-मात्र पुत्र था। वह पहले रेलवे-क्लर्क था, अपने मित्र के साथ रहता था। एक दिन उसका मित्र सब माल-असबाब लेकर चंपत हो गया। इसने उसका पीछा करने का निश्चय किया। पता लगा कि वह बाटुम की ओर गया है। यह भी बाटुम पहुँचा। वहाँ जाने पर वह ओडेसा को निकल भागा। इसने किसी दूसरे मित्र से, जो सूरत-शक्ल और उम्र में इससे मिलता-जुलता था, पासपोर्ट माँग लिया और ओडेसा में आकर पुलिस में रिपोर्ट कर दी। मामले की जाँच होने लगी। इसीमें एक पखवारा बीत गया। उसका खर्च चुक गया। चार दिन हुए अन्न से भेंट नहीं हुई थी।

मैं ध्यान से सुन रहा था। उसके मित्र को बीच-बीच में कोसता भी जाता था। वह चुप रहने को कहता, मैं उसे ताकने लगता। मुझे युवक के लिये बड़ा खेद हुआ। वह उन्नीस वर्ष

मरभुखा तो तीन आदमियों की खुराक अकेले ही चट कर जाता। रूस के उत्तरी भाग में अकाल पड़ा था, किसानों के झुंड-के-झुंड काम की खोज में चले आ रहे थे। इसीसे उक में मजदूरी कम हो गई थी। मैं दिनभर में रुपया सवा रुपया पैदा कर लेता था। पर भोजन में ही पंद्रह-सोलह गंडे लग जाते थे।

मेरी इच्छा पहले से ही वहाँ रहने की नहीं थी। मैंने उससे क्रीमिया चलने को कहा—"वहाँ तक पैदल चला जाय, कोई साथी मिल जाय तो तुम चले जाना, नहीं तो मैं तुम्हें स्वयं पहुँचा आऊँगा।"

वह दुखी होकर बूट, हैट और पायजामे को निहारने लगा। लगा कोट झाड़ने और धनने-ठनने। कुछ देर सोचकर उसने गहरी साँस ली और बात मान ली। हम पैदल चल पड़े।

(२)

रास्ते में उसकी बहुत-सी बातों का परिचय मिला। वह देहाती था, ठिगने शरीर का था, चलने नहीं पाता था। पेट भर लेने पर प्रसन्न रहता और भूखे रहने पर मुँह लटका लेता। जानवर की तरह बिगड़ उठता। उसने अपने देश के जीवन का वर्णन किया, जमींदारों की शान-शौकत की चर्चा की। उनके आनंद, ऐशो-आराम और किसानों पर उनके अत्याचार की कथा कही। बातें बड़ी रोचक और मनोहर थीं, पर मेरी तो अश्रद्धा ही बढ़ रही थी।

उसने एक कथा यों कही—"किसी धनी राजकुमार ने एक बार लोगों को निमंत्रित किया। भोज में उत्तमोत्तम सामग्रियाँ

जुटाई गई। जेवनार हो जाने पर वह उन्हें अस्तवल में ले गया। घुड़दौड़ होने लगी। कुमार का घोड़ा बहुत बढ़िया था, पर था मुँहजोर। उसकी चाल और बनावट प्रशंसनीय थी। मैदान में एक किसान ने अपने तेज घोड़े से उसे पिछाड़ दिया, और गर्व से हँसने लगा! कुमार को सबके सामने लज्जित होना पड़ा, त्यौरी चढ़ गई। उसने किसान को ललकारा और कटार से उसका सिर काट डाला, पिस्तौल से उसके घोड़े को गोली मार दी। वह स्वयं पुलिस के सुपुर्द हो गया और राज-दंड भोग लिया।"

वह राजकुमार के साथ सहानुभूति प्रकट कर रहा था, मैंने इसे अनुचित ठहराया।

"संसार में जितने किसान हैं, उतने राजकुमार नहीं"—उसने उपदेश देते हुए कहा—"किसान के लिये राजकुमार को दंड! किसान तो किसान ही है!" उसने मुट्ठी भर बालू ली और कहा—"कुमार एक चमकता हुआ सितारा था!"

मैं उससे वाद-विवाद करने लगा, वह रुष्ट हो गया। भेड़िये की तरह दाँत निकाल लिए।

"भाई, तुम इन बातों को क्या समझो! अच्छा, अपनी जबान बंद रखो।"—वह बिगड़ उठा।

मेरे तर्क उसका विश्वास दूर नहीं कर सकते थे। जो स्पष्ट बात थी, उसे वह भद्दी समझता। मेरे तर्क उसके दिमाग में धँसते तो कैसे! यदि मैं अपने तर्क की सार्थकता सिद्ध करता तो वह बिगड़कर कहने लगता—

"वहाँ जाकर रहो, तब न समझो ! तुम्हारी बात मानूँ भी तो कैसे ? तुम्हीं एक ऐसे मिले जो इसे अनुचित बतलाते हो।"

मैं चुप हो गया, समझ लिया कि इससे कोई लाभ नहीं। वह इस प्रकार हारनेवाला नहीं था, उसका उस जीवन में दृढ़ विश्वास था। ऐसा जीवन कानून से भी तो उचित समझा जाता है ! मैं चुप था। वह अपने को जीवन का ज्ञाता समझता था और अपने वचनों को अकाट्य। मुझे चुप देख उसने मग्न होकर फिर वही गाथा छेड़ दी। उसकी कथा में अशिष्ट सौंदर्य था, अग्नि की ज्वाला भरी हुई थी। मेरे लिये उसमें न तो रोचकता थी, न आकर्षण। केवल अश्रद्धा और घृणा बढ़ती जा रही थीं। निर्दयता का नग्न नृत्य, द्रव्य की भयंकर उपासना और बल का अमानुषी प्रदर्शन सुनते-सुनते मैं ऊब उठा। उनमें सदाचार और मनुष्यों के प्रति समता के व्यवहार का एकदम अभाव था।

मैंने पूछा—"क्या तुम ईसा का उपदेश जानते हो।"

"हाँ, हाँ, जानता हूँ।"—उसने मटकते हुए उत्तर दिया।

पर परीक्षा लेने पर पता चला कि वह केवल यही जानता है कि कोई ईसा नाम का व्यक्ति हुआ था, जिसने यहूदियों का पक्ष लिया और उन्होंने उसे शूली दे दी। पर उनकी मृत्यु शूली पर नहीं हुई, सीधे स्वर्ग चले गए और संसार के लिये नया विधान किया।

"कौन विधान ?"—मैंने पूछा।

उसने अविश्वास से पूछा—"तुम ईसाई हो क्या ? मैं भी तो

ईसाई हूँ। संसार में बहुत से ईसाई हैं। तुम पूछकर क्या करोगे? ईसाई कैसे रहते हैं, सब जानते हैं।

मैं उत्तेजित हो उठा और उसे ईसा के जीवन की बातें बताने लगा। पहले तो उसने ध्यान से सुना, पर पीछे जँभाई लेने लगा।

मैं समझ गया कि उससे कुछ कहना व्यर्थ है। मैं पारस्परिक सहायता, नियम-पालन और सदाचार की महत्ता और गुण ही बतलाता रहा और कुछ नहीं।

"शक्तिशाली स्वयं नियम-स्वरूप है! उसे सीखने-पढ़ने की आवश्यकता नहीं। वह अंधा होते हुए भी मार्ग ढूँढ़ लेगा।"— उसने हारकर उत्तर दिया।

वह सत्यता का व्यवहार कर रहा था, इससे मेरे हृदय में सम्मान का भाव जगने लगा। अशिष्ट और निर्दय होने के कारण उसके प्रति घृणा भी फूट पड़ती। पर मुझे समझौते की आशा थी, विभेद दूर हो जाने का विश्वास था, इससे वह बढ़ न पाती।

मैंने सीधी-सादी भाषा में बात आरंभ की और मनोयोग-पूर्वक उसका मनन करने लगा। वह ताड़ गया, उसने समझा कि मैं अपने को बड़ा समझता हूँ। इससे वह जोर देकर अपनी बातों की पुष्टि करने लगा। मैं हार मान बैठा। समझ लिया कि इसकी धारणा की दृढ़ दीवाल से टकराकर मेरे सारे तर्क चूर-चूर हो जायँगे।

(३)

क्षितिज के पास पर्वत-माला का मनोहर दृश्य दिखाई देने

लगा। मानों पीत-श्याम मेघ सुकुमारता के साथ लहरा रहे हैं। मेरी भावुकता फूट पड़ी। मैं उस प्रदेश में विहार करने का स्वप्न देखने लगा। राजकुमार उदास होकर कोई-न-कोई तान छेड़ बैठता। सारा रुपया चुक गया था, काम मिलने की भी कोई आशा न थी।

निकट के एक स्थान में काम जोरों के साथ लगा था। उसने भी काम करने की इच्छा प्रकट की, मनसूबे बाँधने लगा—"रुपये कमाने पर नाव लूँगा, उसीपर चढ़कर घर जाऊँगा। वहाँ कितने ही मित्र हैं, तुम्हें भी काम दिला दूँगा। तुम कहीं-न-कहीं निरीक्षक बन जाओगे।" उसने हाथ मारते हुए सोल्लास कहा—"मैं तुम्हारा प्रबंध करूँगा। क्या तुम इसी तरह कष्ट में पड़े रहोगे? शे! शे! खूब ढालना और खूब खाना। तुम्हारा विवाह भी करा-दूँगा। लड़के-बच्चे होंगे, मौज करना! शे! शे! शे!"

'शे! शे! शे!' के निरंतर प्रयोग से पहले तो मुझे चकपकाहट हुई, फिर रोष आने लगा, उदासीनता ज्ञात होने लगी। रूस में इस प्रकार सुअर के बच्चे बुलाए जाते हैं, पर काकेशिया में यह आनंद, खेद और हर्ष प्रकट करता है। उसकी भड़कीली पोशाक गंदी होने लगी। बूट कई जगह फट गए। हैट और छड़ी तो रास्ते ही में बेंच दी गई। हैट बेंचकर एक पुराने ढंग की टोपी ली गई थी। वह टोपी सिर पर लगाकर उसने पूछा—"क्यों अच्छी लगती है? कैसा जँचता हूँ?"

(४)

हमलोग कोमिया पहुँचे।

मैं आनंदित होकर आगे-आगे चुपचाप चल रहा था। उस समुद्र-वेष्ठित प्रदेश की मनोहरता से आश्चर्यचकित था।

वह उसासें ले रहा था, रो रहा था और उदास होकर इधर-उधर देखने लगता था। जंगली फलों से किसी प्रकार पेट भर लेता। कभी-कभी तो भूख के मारे जहरीले फल भी खा लेता। अंत में उसने व्यथित होकर कहा—"इनके खाने से तो मेरी आँतें निकली आ रही हैं, चलूँ तो कैसे चलूँ!"

पास में एक पैसा नहीं, काम मिलने का नहीं; भोजन आवे तो कहाँ से? फलों पर ही निर्वाह करना था, भविष्य के भरोसे चलना था।

वह मुझको सुस्त कहता, कोसता और बिगड़ता। मैंने वैसा पेटू कभी नहीं देखा था, उसकी विचित्र कहानियाँ ही सुनकर मैं पेट भर लेता। जितना मैं दिनभर में खा सकता था, उतना तो उसका जलपान था। शराब की बोतलों की तो कोई गिनती ही नहीं। दिनभर वह भोजन के ही फेर में रहता, उसीकी चर्चा करता। अपने यहाँ के भोजन और चटनी-अचार के बखान में उसकी जीभ थकती ही न थी। दिनभर ओंठ चाटा करता, आँखें मटकाता रहता, दाँत काढ़कर मुँह चलाने लगता, लार घूँटने लगता। मैं तो ऊबकर उसकी ओर देखता ही नहीं, मुँह फेर लेता।

किसी प्रकार एक काम मिला। पेड़ों की सूखी डालें तोड़नी थीं। मुझे बारह आने पैसागी मिले। सब-का-सब जलपान में ही लग गया। ज्यों ही मैं सामान लेकर लौटा, बागवान ने मुझे बुला लिया। मैं अपना सारा भोजन छोड़कर काम पर चला गया। उसने सिरदर्द का बहाना करके जी छुड़ाया। मैं एक घंटे बाद लौटा, तो मेरे लिये एक टुकड़ा भी नहीं! वह पेटू सब कुछ चट कर गया। मैंने उसके इस अनुदार व्यवहार की परवा नहीं की। मुझे अपनी भूल पीछे चलकर मालूम हुई।

मेरी चुप्पी से वह जान-बूझकर लाभ उठाता था। उसका बर्ताव निर्लज्जतापूर्ण ही होता गया। मैं तो काम करता और वह खाता, पीता, मस्त रहता। कोई-न-कोई बहाना ढूँढ़कर वह काम से जी चुराता, और मेरे हाथ जोड़ता। मैं टालस्टाय का अनुयायी तो था नहीं, दिनभर के बाद काम करके थका हुआ लौटता तो बच्चू पड़े-पड़े चारपाई तोड़ते हुए नजर आते! इसपर भी वह छोकड़ा हँसने लगता। मैं मर्माहत हो जाता। इधर उसने भिखमंगी सीख ली थी, इसीसे वह हँसता था। वह मुझे तो घास-भूसा समझता था। पहले उसे भीख माँगने में लज्जा हुई, पर पीछे धड़का खुल गया। एक गाँव में तो वह खुल्लमखुल्ला भीख माँग रहा था। माँगने का ढंग भी अनोखा था, वह दुर्बल बनकर लाठी के सहारे झुक जाता, एक पैर घसीटता चलता, मानों लँगड़ा हो। क्योंकि भले-चंगे को कौन भीख देता है? मैं उसे समझाता, तो बस खीसें काढ़ देता।

अभागे भविष्य ! मनुष्य तुझपर आशाओं का ऐसा बोझ लाद देता है कि ज्यों ही तू वर्तमान हुआ तेरा माधुर्य मिटा।

हमने रात में विश्राम किया। समुद्र-तट से चलने का विचार था। रास्ता कुछ चक्कर से था, पर समुद्र की सुहावनी वायु में विचरने की लालसा थी। आग जलाई गई। रात्रि मनोरम थी। नीचे हरिताभ सागर लहरा रहा था, ऊपर नील व्योम की रमणीकता थी। विटपों से मधुर समीर बह रहा था। लताएँ झूम रही थीं, सुधाकर आकाश के सोपान पर चढ़ रहा था, हरे-हरे वृक्षों की छाया पत्थरों पर लोट रही थी। पक्षी चहक रहे थे, कूजना मनोहर और स्वच्छ था। वह संगीत तरंगों की कोमल ध्वनि में घुला जा रहा था। झिल्ली झंकार से निस्तब्धता भंग कर रही थी। आग लहरा रही थी, ज्वालाएँ पीत-लोहित कुसुमों के विशाल गुच्छ-सी जान पड़ती थीं। उनकी छाया चारों ओर नाच रही थी, मानों चंद्रमा की ज्योत्स्ना का प्रसार रोक रही हो। वायु में विचित्र ध्वनि थी। क्षितिज की विशालता सागर की विस्तीर्णता में समा गई थी। आकाश में मेघों का नाम नहीं था। मैं मानों पृथ्वी के सर्वोच्च तुंग पर बैठा अनंत की ओर निहार रहा होऊँ। रजनी की विभूति और सौंदर्य में मादकता थी। मेरी सत्ता वर्णों, ध्वनियों और सुगंधों के समन्वय में लीन हो गई।

आत्मा आश्चर्य से जड़ीभूत थी। मानों पार्श्वदेश में कोई महान् शक्ति विराजमान हो। संजीवनी के आनंदातिरेक से हृदय उछल पड़ा।

सहसा वह जोर से अट्टहास कर उठा—"हा ! हा ! हा ! तुम्हारा चेहरा कितना भद्दा हो गया ! ठीक भेड़ का-सा ! हा ! हा ! हा !"

मानों सहसा भीषण वज्रपात हुआ। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गए।

हँसते-हँसते उसका पेट फूल गया, आँसू निकल पड़े। मैं भी रुदन करना चाहता था, पर कंठ में ज्वाला धधक उठी, घिग्घी बँध गई। मैं आँखें फाड़फाड़कर निहारने लगा, वह हँसते-हँसते लोट पोट हो गया। मैं यह भीषण अपमान न सह सका। सहृदय व्यक्ति उस भीषणता की कल्पना स्वयं कर लें।

"चले जाओ !"—मैं उत्तेजित होकर चिल्ला उठा।

वह चकपका उठा, भयभीत हो गया, पर हँसी न रोक सका। आँखें चकराने लगीं, कपोल फूल गए ? वह फिर हँस पड़ा। मैं उठकर चलता बना।

मैं इधर-उधर मँड़राने लगा। मुझमें न तत्परता थी, न चेतना। आत्मा अपकार से व्यथित हो उठी। मैं हृदय से प्रकृति का आलिंगन कर रहा था। कवि-हृदय ही मेरे प्रकृति-प्रेम और पूजन को समझ सकता है। मानों स्वयं प्रकृति शत्रो का रूप धरकर मेरे भावोन्मेष की खिल्ली उड़ा रही हो। मैं प्रकृति और जीवन के विरुद्ध न जाने कितने अपराधों का आरोप करता, पर पैरों की आहट सुनकर रुक गया।

"रोष मत करो !"—उसने पश्चात्तापपूर्वक कहा। उसने

भेड़िये की भाँति दाँत पीसने लगता। उसके भोजन का परिमाण मुझे नित्य चकपकाया करता। अब वह स्त्रियों की बातचीत करने लगा—वह भी बहुत अधिक! स्त्रियों को देखते ही कामियों की तरह मुसकुराने लगता। कोई स्त्री हो, देखते ही अश्लील बातें बकने लगता। इस विषय में वह बहुत स्वच्छंद हो गया। उसे स्त्रियों का ज्ञान भी बहुत था। मैं तो उसकी भद्दी बातों से ऊब गया। एक बार मैंने स्त्रियों की बड़ाई की, तो वह बहुत रुष्ट हो गया। उसने इसे व्यक्तिगत अपमान समझा। मैंने यह चर्चा ही छोड़ दी।

हमने समुद्र-तट को छोड़कर छोटा रास्ता पकड़ा। झोले में कुछ भी न था। एक डेढ़ सेर की चपाती भर थी, जो रास्ते में मोल ली गई थी। चलते-चलते पैरों ने जवाब दे दिया। काम भी ढूँढ़ते तो कैसे! उसकी भिखमंगी किसी काम की न निकली। बस, कोरा जवाब मिलता—"चलो, ऐसे बहुत-से पड़े हैं।"

सचमुच उस वर्ष लोग भूखों मर रहे थे, संत्रस्त थे। अकाल-पीड़ित किसान दल बाँधे देशभर में मारे-मारे फिर रहे थे। बच्चों को गोद में ढोते या हाथ पकड़कर घसीटते। शरीर स्याह पड़ गया था, हड्डियाँ निकल आई थीं, शरीर में रुधिर के स्थान पर मानों विष भरा हो। हड्डियाँ सूखे माँस में मानों चिपकी भर थीं। शब्दों से उनका निरूपण हो ही नहीं सकता। वह दृश्य देखकर हृदय में असह्य वेदना होने लगती। मानों कोई कचोट रहा हो।

ये भूखे बच्चे रोते भी न थे; इधर-उधर दृष्टि डालते, लाला-यित होकर बागीचों के फलों और खेतों के अनाज को निहारे

तथा दुखित होकर बड़े-बूढ़ों की ओर टुकुर-टुकुर ताकने लगते, मानों कह रहे हों कि हमारा जन्म इस संसार में क्यों हुआ ?

कभी-कभी बच्चे सगड़ों में बैठे होते, कोई कंकाल-शेष वृद्धा उन्हें खींचती। बच्चों के छोटे-छोटे सिर ताका करते। वे करुण आँखों से चुपचाप नव प्रदेश को निहारा करते, कभी कोई मरकुटहा घोड़ा लड़खड़ाते हुए चलता दिखाई देता, सिर डगमगाया करता, चलके हुए अयाल इधर से उधर हुआ करते।

सगड़ के पीछे अथवा उसे घेरकर बड़े लोग चलते। सिर झुककर छाती में जा लगे थे, बाँहें सुस्त होकर बगल में लटक रही थीं। धुँधली और धँसी हुई आँखों में भूख की ज्वाला भी नहीं थी, एक मार्मिक खेद था। दुर्भाग्य के मारे किसानों का यह जुलूस, घर-बार छोड़े, अनजान देशों में चुपचाप घूमा करता, मानों बोलने से इसलिये डरता हो कि कहीं वहाँ के भाग्यशाली निवासियों की शांति न भंग हो जाय। ये जुलूस कई बार दिखाई पड़े, प्रत्येक बार यही जान पड़ा, मानों लोग बिना मुर्दे की मुर्दनी में जा रहे हों।

कभी-कभी वे डरते हुए शांति के साथ पूछते—"क्या गाँव अभी दूर है ?" उत्तर पाकर वे आह भरने लगते और मूकभाव से निहारने लगते। मेरा साथी इनसे घृणा करता था, क्योंकि ये भिक्षा में बाधक थे।

इन कठिनाइयों और भोजन की क्षीणता के होते हुए भी उसमें स्फूर्ति थी, वैसी दुर्बलता और बुभुक्षित दृष्टि नहीं थी, जो

साँझ हुई। मैं सारे संसार पर कुपित था। एक भीषण योजना तैयार की गई थी, रात आते ही वह कार्यरूप में परिणत हुई।

(६)

संध्या हो जाने पर हम चुपचाप खेवे के घाट की ओर बढ़े। वहाँ तीन नावें थीं, लोहे की कड़ियों में सिक्कड़ों से बँधी थीं। कड़ियाँ दीवाल में मजबूती से फँसी हुई थीं। घोर अंधकार था। जोरों की हवा चल रही थी। नावें एक दूसरे से टकरा रही थीं, सिक्कड़ खड़खड़ा रहे थे। उस अंधकार और कोलाहल में कड़ियों को दीवाल से निकाल लेना सुगम था।

सिर के ऊपर संतरी पहरा दे रहे थे, सीटियाँ बजा रहे थे। पास आने पर हम काम बंद कर देते, पर व्यर्थ। किसे आशंका थी कि कोई गले भर जल में—इस झोंके में खड़े होने का साहस करेगा। सिक्कड़ भी तो खनखना रहे थे। हवा से कभी पीछे जाते, कभी आगे। शक्रो नाव में बीचोबीच लेटा था, कुछ गुनगुना रहा था। शोर के कारण गुनगुनाहट सुन नहीं पड़ती थी। अंत में कड़ी हाथ में आ गई। यकायक लहर आई, मैं उसके साथ ही कोई दस गज की दूर पर जा पड़ा। सिकड़ी थामे नाव के पास क्षणभर तैरता रहा। अंत में उछलकर चढ़ गया। बीच से दो तख्ते उखाड़ कर डाँड़े बना लिए और छपाछप खेते हुए निकल भागे।

ऊपर मेघ तेजी से उड़ रहे थे, नीचे चारों ओर लहरें थीं, नाव में जोर से टक्कर मार रही थीं। शक्रो पतवार पर था। सहसा वह आँखों से ओझल हो जाता, नाव का पिछला भाग पानी

इन मरमुखे किसानों में दिखाई देती थी। जब उसे इनका गिरोह दिखाई देता तो वह बोल उठता—"ओ! ओ! ओ! ये फिर दिखाई पड़े! ये क्यों घूम रहे हैं? ये सदा चक्कर ही काटते रहते हैं! इन्हें कहीं जगह नहीं? ये क्या चाहते हैं? रूसी बड़े जड़ हैं!"

जब मैं उसे समझाता तो वह अविश्वास से सिर हिलाता और कह देता—"समझ में नहीं आता! सब फजूल है! मेरे यहाँ ऐसी जड़ता नहीं है।"

अगले टिकाव पर पहुँचते ही हम भूख से शिथिल होकर गिर पड़े। देर हो जाने से पुल नहीं पार कर सकते थे, वहीं रात काटनी पड़ी। हमें छिपकर रहना पड़ा, क्योंकि इधर-उधर घूमनेवाले बाहरी लोग शहर से निकाल दिए गए थे। हम चिंतित हो उठे, कहीं पुलिस के हाथ में न पड़ जायँ! शक्रो के पास जाली पास-पोर्ट था। अगर कहीं बात खुल जाती तो हम बड़ी भारी उलझन में पड़ जाते।

रातभर समुद्र के थपेड़े खाते रहे, पौ फटने पर वह स्थान छोड़ दिया। इधर शरीर और कपड़े भीग गए थे और उधर कड़ाके का जाड़ा! दिनभर समुद्र-तट पर चक्कर काटते रहे। कुल जमा दस पैसे कमाए। एक स्त्री की फलों की टोकरी बाजार से घर पहुँचा दी थी।

एक पतली धारा पार करनी थी। पर कोई मल्लाह पार जाने को राजी ही नहीं हुआ। वहाँ के लोग परदेशियों से डरे थे, पहले वे लोग लड़-भिड़ चुके थे, इससे सब हथियारबंद रहते थे।

साँझ हुई। मैं सारे संसार पर कुपित था। एक भीषण योजना तैयार की गई थी, रात आते ही वह कार्यरूप में परिणत हुई।

(६)

संध्या हो जाने पर हम चुपचाप खेवे के घाट की ओर बढ़े। वहाँ तीन नावें थीं, लोहे की कड़ियों में सिक्कड़ों से बँधी थीं। कड़ियाँ दीवाल में मजबूती से कसी हुई थीं। घोर अंधकार था। जोरों की हवा चल रही थी। नावें एक दूसरे से टकरा रही थीं, सिकड़ खड़खड़ा रहे थे। उस अंधकार और कोलाहल में कड़ियों को दीवाल से निकाल लेना सुगम था।

सिर के ऊपर संतरी पहरा दे रहे थे, सीटियाँ बजा रहे थे। पास आने पर हम काम बंद कर देते, पर व्यर्थ। किसे आशंका थी कि कोई गजे भर जल में—इस झोंके में खड़े होने का साहस करेगा। सिक्कड़ भी तो खनखना रहे थे। हवा से कभी पीछे जाते, कभी आगे। शाक्रो नाव में बीचोबीच लेटा था, कुछ गुनगुना रहा था। शोर के कारण गुनगुनाहट सुन नहीं पड़ती थी। अंत में कड़ी हाथ में आ गई। यकायक लहर आई, मैं उसके साथ ही कोई दस गज की दूर पर जा पड़ा। सिकड़ी थामे नाव के पास क्षणभर तैरता रहा। अंत में उछलकर चढ़ गया। बीच से दो तख्ते उखाड़ कर डाँड़े बना लिए और छपाछप खेते हुए निकल भागे।

ऊपर मेघ तेजी से बढ़ रहे थे, नीचे चारों ओर लहरें थीं, नाव में जोर से टक्कर मार रही थीं। शाक्रो पतवार पर था। बहुधा वह आँखों से ओझल हो जाता, नाव का पिछला भाग पानी

के खड्ड में समा जाता। फिर मेरे सिर के ऊपर उठ जाता, वह घबड़ाकर चिल्लाने लगता। मैं मुँह के बल गिर पड़ता। मैंने कहा—"चिल्लाओ मत, पैरों को नाव में कसकर बाँध दो, मेरे पैर कसे हैं।" मुझे डर था कि चिल्लाने से कोई सुन न ले। वह मान गया, मौन हो गया, केवल मैं ही जानता था कि वह नाव में है। सामने उसका उज्ज्वल मुख-मंडल झलक जाता, हाथ में पतवार दिखाई पड़ता। किसीमें हिलने तक का साहस नहीं था।

मैं उसे नाव को सँभालने की तरकीबें बताता। वह मेरी बात फौरन समझ जाता, मानों मल्लाह के ही घर में पैदा हुआ हो। तख्ते डाँड़ के लायक नहीं थे। हाथ भरे जाते थे, नाव तो हवा के झोंके से आगे बढ़ रही थी। वह चाहे जिधर जाय, केवल पार लगने की चिंता थी। उसके बढ़ाने में कोई कठिनाई नहीं थी, पर रोशनी ओझल नहीं हुई थी, इससे कुछ काम चल रहा था। लहरें हरहर करती हुई थपेड़े मार रही थीं। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते वे और भी भीषण होतीं ... ने व ... आत्मा
पर जादू-सा मार दिया ... झोंके से ... से बढ़
रही थी ... व हो ... खड्ड
में जाते ... च। ... ।
न ... ।

कुछ नहीं। वे अंधकार को चीरकर सीधे नाव पर चढ़ी आ रही थीं। मेरे हाथ का एक तख्ता 'चरर्र' करके चर्राया, दूसरा नाव में आ गिरा, मैंने नाव की नोक कसकर थाम ली। नाव ऊपर को उछलती तो शकी चिल्ला उठता। मैं असहाय और दीन था। चारों ओर से कुपित लहरें घेरे हुए थीं। शोर से कान फटे जा रहे थे। मैंने उदास होकर भय से चारों ओर देखा। लहरें-ही-लहरें, बस, उन्हीं का साम्राज्य था। उनके उज्ज्वल शिखर छितरा कर पानी के छींटे उड़ा रहे थे। सिर के ऊपर मेघों ने भी लहरों का रूप धर लिया था।

केवल एक ही बात का ज्ञान था। रमणीय और भीषण दृश्य सामने था, उससे नेत्रों को कोई सुख नहीं! उनकी शक्ति क्षीण हो गई थी। हाय! मृत्यु अनिवार्य है! पर समदर्शी का निष्पक्ष विधान निर्दयता और रुक्षता को रमणीकता से ढक रहा था। कीचड़ या पानी में फँस मरने से तो जलकर मरना अच्छा!

"पाल तान दें तो कैसा?"—शकी ने पूछा।

"पाल कहाँ मिलेगा?"

"ओवरकोट है तो?"

"अच्छा लग्गी से इधर फेंक दो। देखो, कहीं पतवार बह न जाय!"

उसने सँभालकर फेंका—"हाँ, पकड़ो।"

मैंने सरककर नीचे से एक लग्गा और उठाया। सिरे में कोट की एक बाँह डाल दी, उसे सामने खड़ा करके पैरों से दबा

से गड्ढ में गया जाता। फिर मेरे सिर के ऊपर चढ़ आता, व घबड़ाकर चिल्लाने लगता। मैं मुँह के बल गिर पड़ता। मैंने कहा—“चिल्लाओ मत, पैरों को नाव में फँसाकर थाम दो, मेरे पैर कसे हैं।” मुझे डर था कि चिल्लाने से कोई सुन न ले। वह मान गया, मौन हो गया, केवल मैं ही जानता था कि वह नाव में है। सामने चमकता उज्ज्वल मुख-मंडल झलक जाता, हाथ में पतवार दिखाई पड़ता। किसीमें हिलने तक का साहस नहीं था।

मैं उसे नाव को सँभालने की तरकीबें बताता। वह मेरी बात फौरन समझ जाता, मानों मल्लाह के ही घर में पैदा हुआ हो। गमने ठाँव के लायक नहीं थे। हाथ भरे जाते थे, नाव तो हवा के झोंके से आगे बढ़ रही थी। वह चाहे जिधर जाय, केवल पार लगने की चिंता थी। इसके बढ़ाने में कोई कठिनाई नहीं थी, पर रोशनी ओझल नहीं हुई थी, इससे कुछ काम चल रहा था। लहरें हरहर करती हुई थपेड़े मार रही थीं। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते वे और भी भीषण होती जातीं। हाहाकार ने बुद्धि और आत्मा पर जादू-सा मार दिया था। हवा के झोंके से नाव तेजी से बढ़ रही थी। अब रास्ते का निश्चय असंभव हो गया। एक बार खड्ड में जाते, फिर पानी के विशाल पर्वत की चोटी पर जा पहुँचते। अंधकार बढ़ रहा था, मेघ धीरे-धीरे नीचे उतरे आ रहे थे। रोशनी आँखों से ओझल हो गई।

हम व्यग्र हो रहे थे। कुपित लहरों का विस्तार अनंत था, असीम था, बस, विशाल लहरें ही हरहरातीं दिखाई देतीं और

कुछ नहीं। वे अंधकार को चीरकर सीधे नाव पर चढ़ी आ रही थीं। मेरे हाथ का एक तख्ता 'चररर' करके चर्राया, दूसरा नाव में आ गिरा, मैंने नाव की नोक कसकर थाम ली। नाव ऊपर को उछलती तो शक्की चिल्ला उठता। मैं असहाय और दीन था। चारों ओर से कुपित लहरें घेरे हुए थीं। शोर से कान फटे जा रहे थे। मैंने उदास होकर भय से चारों ओर देखा। लहरें-ही-लहरें, बस, उन्हीं का साम्राज्य था। उनके उज्ज्वल शिखर छितरा कर पानी के छींटे उड़ा रहे थे। सिर के ऊपर मेघों ने भी लहरों का रूप धर लिया था।

केवल एक ही बात का ज्ञान था। रमणीय और भीषण दृश्य सामने था, उससे नेत्रों को कोई सुख नहीं! उनकी शक्ति क्षीण हो गई थी। हाय! मृत्यु अनिवार्य है! पर समदर्शी का निष्पक्ष विधान निर्दयता और रुक्षता को रमणीकता-से ढक रहा था। कीचड़ या पानी में फँस मरने से तो जलकर मरना अच्छा!

"पाल तान दें तो कैसा?"—शक्की ने पूछा।

"पाल कहाँ मिलेगा?"

"ओवरकोट है तो?"

"अच्छा लग्गी से इधर फेंक दो। देखो, कहीं पतवार बह न जाय!"

उसने सँभालकर फेंका—"हाँ, पकड़ो।"

मैंने सरककर नीचे से एक तख्ता और उठाया। सिरे में कोट की एक बाँह डाल दी, उसे सामने खड़ा करके पैरों से दबा

लिया। ज्यों ही कोट की दूसरी बाँह पकड़ने चला, त्यों ही नाव यकायक उछली और उलट गई। मैं पानी में जा रहा। एक हाथ में कोट की बाँह थी, दूसरे से नाव में बँधा एक रस्सा पकड़ लिया। लहर हरहराती हुई सिर पर से निकल गई। नाक, मुँह और कानों में खारा पानी भर गया।

लहरें आगे फेंक रही थीं। मैंने भरपूर जोर से रस्से को थाम रखा था। कई बार गोते खाने पड़े, सिर नाव के किनारों में खड़ से टकरा जाता।

मैंने कोट को नाव के तलपट पर डाल दिया, और दस बारह बार प्रयास करने पर उसपर उछलकर बैठ गया। शक्रो नाव के दूसरे सिरे पर पानी में रस्से को थामे बह रहा था। ना चारों ओर से रस्से से जकड़ गई थी।

"बच गए!"—मैं चिल्लाया।

शक्रो भी उछलकर तलपट पर आ बैठा। मैंने उसे पक लिया। दोनों आमने-सामने बैठ गए। वह टोपीनुमा नाव म घोड़ा हो, रस्सी रकाब का काम दे रही थी। हम फिर भी सु क्षित न थे, एक ही लहर हमें रकाब से बाहर कर सकती थ शक्रो ने मेरे घुटने जोर से पकड़ लिए थे, माथा छाती में चि दिया था। वह ठिठुरा जा रहा था, दाँतो की खटखटाहट सु पड़ती थी। तलपट में फिसलन थी। मैंने उससे कहा कि में उतर चलो, एक ओर का रस्सा पकड़ लो, मैं दूसरी ओ पकड़ लूँगा।

वह चुपचाप मेरी छाती में माथा ठकठकाने लगा। लहरें तांडव करती हुई दौड़ी आ रही थीं। हम जमे बैठे थे। रस्से की रगड़ से पैर कटा जा रहा था। लहरें पहाड़ की भाँति उठती और हरहराती हुई लुप्त हो जातीं।

मैंने उसे डाँटा। वह फिर माथा ठकठकाने लगा। मैंने धीरे-धीरे उसके हाथ हटाए और उसे पानी में ढकेल दिया, हाथ में रस्सा थमा दिया। पर उसकी बात से मेरा तो होश-हवास गुम हो गया।

"मुझे डुबा रहे हो ?"—वह चिल्लाया।

उसका स्वर बड़ा भयावह था। इसमें दुर्भाग्य की अधीनता का स्वीकार, दया की प्रार्थना और निराश होकर मरते समय की अंतिम उदासी का संमिश्रण था। उसकी आँखें तो और भी भयंकर थीं।

"जोर से थाम।"—मैंने चिल्लाकर कहा। मैं भी पानी में उतर गया, रस्से को पकड़ लिया। नीचे उतरते ही पैर किसी चीज से टकराया, बड़ी विकट पीड़ा होने लगी, बेसुध हो गया। होश आने पर आनंद से उछल पड़ा, शरीर में बिजली दौड़ गई।

"जमीन !"—मैंने चिल्लाकर कहा।

भू-अन्वेषणों ने नए स्थान का पता पाकर वैसे भाव से इस शब्द का उच्चारण कभी न किया होगा। शक्रो आनंद से नाच उठा। दोनों पानी में बढ़ने लगे। पर तुरत ही दिल धक-से हो गया।

(७)

तीन बड़े-बड़े झबरे कुत्ते अँधेरे को चीरकर निकले और
[रो ओर झपटे। शक्रो सिसक रहा था, वह चिल्ला उठा,
[म से गिर पड़ा। मैंने कुत्तों पर गीला ओवरकोट फेंक दिया
[र ढेला खोजने के लिये झुका। पर काँटेदार झाड़ी के सिवा
[हाँ कुछ न था। हाथ छिद गए। कुत्ते भूँक रहे थे। मैंने उँगलियों
[मुँह में डालकर जोर से सीटी बजाई, वे भाग खड़े हुए।

कुछ देर में हम आग के पास जा पहुँचे। वहाँ चार गड़ेरिये
[भेड़ के चमड़े का चोगा पहने बैठे थे। वे बड़े गौर और संदेह से
[हमें निहारने लगे। मैंने अपनी राम-कहानी सुनाई, वे चुपचाप
[सुनते रहे।

दो जमीन में बैठे हुक्के पी रहे थे, मुँह से धुएँ के बादल
[निकल रहे थे। तीसरा लंबा था, घनी और काली दाढ़ी थी, सिर
[पर रोएँदार लंबी टोपी थी। वह पीछे खड़ा था। उसके हाथ में
[एक सोंटा था। उसीपर वह झुका खड़ा था। चौथा कम अवस्था
[का था, उसके केश कमनीय थे। उसने शक्रो के गीले कपड़े उतारे।
[उनके लट्ठों को देखकर ही हमें भय होता था।

कुछ दूर भूमि किसी भूरी एवं असम वस्तु से ढकी थी।
[वसंत में हिम के गलते समय का-सा दृश्य था। सहस्रों भेड़ें बैठी सो
[रही थीं। अँधेरी रात में झुंड घनीभूत दिखाई पड़ता था। कभी-
[कभी वे मिमियाने लगती थीं।

मैंने आग से ओवरकोट सुखा लिया। मैंने उनसे सब साफ़-

पासपोर्ट की बात भूल गया हूँ। सहसा मन में एक क्रूर भाव उठा।

"ठहरो।"—मैंने कहा।—"क्या तुम्हें विश्वास है कि मैं डुबो रहा था?"

"न! पर जब पानी में ढकेल रहे थे, तब ऐसा ही सोचा थ ज्यों ही तुम भी कूद पड़े, भ्रम दूर हो गया।"

"शिव-शिव!"—मैंने कहा—"तुम्हें अनेक धन्यवाद!"

"ओह! मुझे धन्यवाद देने की आवश्यकता! धन्यवाद तुम्हें मिलना चाहिए। आग के पास तुमने अपना ओवरकं सुखाकर मुझे दे दिया, स्वयं जाड़ा खाते रहे। तुम बड़े सज्ज हो। घर पहुँचकर तुम्हें इनाम दूँगा। पिताजी से कहूँगा—'आ इसे ही पुत्र समझिए, पालिए-पोसिए। मुझे किसी काम पर नौक रख लीजिए। तुम्हें चकाचक भोजन कराऊँगा, खूब ढालना! मेरे भोजन में शरीक होना!"

इसी प्रकार थोड़ी देर तक वह बड़े-बड़े प्रलोभन दिखाता रह

वह तो बातें कर रहा था और मैं सज्जनों एवं सदाचारियों क्लेशों की कल्पना में मग्न था। वे बेचारे जीवन के पथ में अ होते हैं, भटकते फिरते हैं। उनसे सभी यात्री अपरिचित होते उन्हें नहीं पहिचान पाते। इन एकांत-सेवी महात्माओं के लि जीवन एक बोझ-सा होता है। वे असहाय मारे-मारे फिरते जैसे वायु में कभी-कभी बढ़िया बीज उड़ा करते हैं, उन्हें भू-भाग में गिरने का सौभाग्य ही नहीं मिलता।

प्रभात हुआ। सुदूर जलधि कुंदन की भाँति चमक उ

"नींद लग रही है।"—शक्रो ने कहा।

मैं ठहर गया। तट पर वायु के भीषण प्रहार से बालुका में गड्ढे पड़ गए थे। एक में वह लेट गया। उसने कोट ओढ़ लिया और सो गया। मैं बैठा-बैठा मनोयोगपूर्वक रत्नाकर की विभूति विलोकने लगा।

जलधि का जीवन विशाल है, गति शक्तिशालिनी है।

तरंगें तट पर प्रहार कर रही थीं, वे सिकता पर लुढकती आतीं। पानी के जमीन में धँसने से 'सों-सों' ध्वनि होने लगती। उनके छोर में फेन की गोट लगी थी। चलने में उनके वसन 'सर-सर' होने लगते। वे पलटकर अपनी बहनों से मिलतीं। फेन और छींटों से ओतप्रोत होकर फिर लौटतीं और तट को आलिंगन कर जातीं। वे मानों साम्राज्य का विस्तार करने को झगड़ रही हों। क्षितिज से तट तक शक्तिशालिनी लहरें दौड़ रही थीं। मंडल बाँधकर बढ़ रही थीं। तरंगों की चोटी पर बाल-रवि रत्नजटित गोल आभूषण-सा लगता था। सुदूर क्षितिज में अरुणिमा छाई थी। सागर के आसुरी उच्छ्वास से उद्वेलित जलकण भी बाहर नहीं जा पाते थे। मानों इसका भी कोई रहस्य हो।

इन स्वर-लहरी संयुक्त आघातों का कोई ध्येय था! अग्रगामी तरंगों की दिव्य मनोहरता में किसी अभिचार का संकेत था! मौन तट पर थपेड़े क्यों लग रहे थे? इसीलिये। शांत और संपन्न सागर का दृश्य बड़ा भव्य था, वह अपनी शक्ति समेटे बढ़ता ही जा रहा था। उसमें इंद्रधनुष के विविध वर्ण प्रतिबिंबित हो

थे। मानों इनके व्याज वह शक्ति एवं रमणीकता के अभिमान और हर्ष में मग्न हो।

तट के पास से जाते हुए स्टीमर ने जल का वक्षस्थल चीर डाला। विचलित वारिधि पर वह मतवाली चाल से जा रहा था आतंक जमानेवाली तरंगों के शिखर आघात से चूर करता जा था। किसी दूसरे अवसर पर यह दृश्य देखकर मैं मनुष्य प्रतिभा-बल की विचारधारा में मग्न हो जाता। उसने इसी द्वारा पंचतत्वों को दास बना लिया है। पर इस अवसर पर त मानव का रूप धारणकर एक स्वच्छंदचारी तत्त्व मेरे पार्श्व देश में स्वयं विराजमान था।

(९)

यात्रा में उसके कपड़े लत्ते-लत्ते हो गए। बाल रूखे होकर बिखर गए। पर उसकी दानवता नहीं दूर हुई। पर्याप्त भोजन और यथेष्ट कार्य मिलने पर भी उसने राक्षसी स्वभाव नहीं छोड़ा। वह किसी काम का नहीं था। एक बार छोटा-सा काम मिला। अन्न की ओसाई हुई राशि को बटोरना था। दोपहर तक काम करने पर वह भाग खड़ा हुआ, हथेलियों में छाले पड़ गए, घाव हो गया। दूसरी बार मेरे साथ पेड़ों के उखाड़ने का काम करने लगा, पर गर्दन में कुल्हाड़ी ही लग गई।

हम यात्रा धीरे-धीरे कर रहे थे। दो दिन काम करते, तीसरे दिन सफर। वह तो जो कुछ पाता सभी हड़प जाता। उसके पेटूपन से पैसा भी नहीं जुटने पाता था, नए कपड़े कहाँ से आते।

उसके कपड़े विविध रंग और आकारवाले टुकड़ों को विलक्षण ढंग से जोड़-जाड़ कर बनाए गए थे। मैंने उसका मद्य-पान छुड़ाने का बड़ा प्रयत्न किया, पर व्यर्थ।

मैंने लुका-छिपाकर किसी प्रकार कपड़े बनवाने के लिये सात-आठ रुपये जोड़े, पर एक दिन मौका पाकर उसने थैली से रुपये निकाल लिए, खूब शराब पी और जहाँ मैं काम कर रहा था वहाँ पहुँचा। साथ में कहीं से एक औरत भी ले आया। औरत ने मुझे इस प्रकार प्रणाम किया—"प्रणाम, अधर्मी कहीं के!"

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने ऐसा कहने का कारण पूछा। उसने बड़े ताव से उत्तर दिया—"अरे नीच, तू एक युवक को युवती पर प्रेम करने से रोकता है। जो विधि-विहित है उसपर कैसा शासन? दुष्ट, अधम!"

शाको सिर हिलाकर उसका अनुमोदन कर रहा था। वह नशे में खूब चूर था, कभी पीछे जाता कभी आगे, फिर जमकर खड़ा हो जाता। निचला होंठ सुस्ती से लटक आया था। वह धृष्टता-पूर्वक मिलमिलाती हुई आँखों से मुझे घूर रहा था।

"क्या देखते हो? इसके रुपये लाओ।"—उस निर्मम युवती ने डाँटकर कहा।

"कैसे रुपये?"—मैंने आश्चर्य-चकित होकर पूछा।

"जल्दी करो, नहीं पुलिस के हवाले करती हूँ। ओडेसा में तो इससे ढाई सौ उधार लिये थे, लाओ।"

मैं बड़े फेर में पड़ा। अगर यह भूठ ही पुलिस में रपट क

देती तो मेरा कचूमर निकल जाता। शक्रो भी तंग होता। किस प्रकार उसे चकमा दिया, तीन बोतल शराब पिलाई। वह धड़ाम से जमीन पर गिरी और सो गई। तब मैंने शक्रो को भी सुलाया

दूसरे दिन तड़के हम लोगों ने गाँव से पीठ फेरी और फलों के बीच गहरी नींद में लेटी हुई युवती को वहीं छोड़कर चलते बने

नशे का सुरूर उतर जाने पर शक्रो की हालत बहुत खराब हो गई, मुँह सूज आया, चेहरा क्षत-विक्षत हो गया। वह धीरे-धीरे थूकता हुआ चल रहा था। गहरी साँसें लेता। मुझसे बात ही न करता। सिर ऐसा हिला रहा था, जैसे थका घोड़ा।

गर्मी का दिन था, हवा भाफ से भरी थी। भाफ पृथ्वी से उठकर हवा में घुल रही थी। हरी-हरी घास का मखमली बिस्तर शांत सागर की भाँति बिछा हुआ था। उष्ण वायु सरस सुगंधि से ओत-प्रोत थी। उसमें मस्तक मार्जन करने लगा।

हम चौड़ी सड़क छोड़कर पगडंडी से चलने लगे। मार्ग में लाल-लाल सर्प चक्कर लगा रहे थे। पैरों में कुंडली मारकर लिपट जाते। दक्षिण दिशा में क्षितिज के निकट गिरिशिखर मेघाच्छादित थे, मालाकार दिखाई पड़ते थे, धूप में रजत-राशि से जान पड़ते थे।

निस्तब्धता का साम्राज्य था, तंद्रा दबे पाँवों चली आ रही थी। मन किसी स्वप्न-लोक में मग्न हो जाता। पीछे आकाश में श्याम मेघ मंथर गति से घूम रहे थे। उनके एकत्र होने से ध्वांत राशी-भूत हो जाता। आगे आकाश स्वच्छ था। लघुकाय जलद स्वानंद दौड़ रहे थे। पीछे के पयोद घनश्याम और त्वरित होते जाते थे।

विद्युत् निनाद करती हुई मानों कुपित होकर दौड़ी आ रही हो। बड़ी बड़ी बूँदें टपाटप घास पर पड़ने लगीं। मानों कोई वर्तन टनाटन बज रहा हो। शरण लेने का स्थान नहीं! उधर अंधकार भी घनघोर। धीरे-धीरे बड़ी भीषण एवं भयावह ध्वनि प्रस्फुटित होने लगी। बिजली तड़पी, एक सुवर्ण-रेखा से पयोदों का पटल फट गया, कंपन होने लगा। पुनः अंधकार छा गया, सुदूर-स्थित रजत-राशि फिर ध्वांत में विलीन हो गई। मूसलाधार पानी गिरने लगा। विस्तृत क्षेत्रों के ऊपर मेघों का भीषण गर्जन निरंतर होने लगा। वायु और बूँदों के आघात से हरे पौधे मंद-मंद ध्वनि करके 'सर्र' से पृथ्वी पर लोट गए। सभी पदार्थों में कंपन था, क्लेश का भाव था।

विद्युत ने प्रलयंकर पयोदों को चीरकर छिन्न-भिन्न कर दिया। सुदूर-स्थित पर्वतमाला की हिमाच्छादित शृंखला रजत-राशि के रूप में फिर उपस्थित हुई, नीली ज्योति में चमक उठी। प्रकाश के शांत पड़ जाने पर गिरिमाला भी विलुप्त हो गई, मानों ध्वांत-सागर में कूद पड़ी हो। वायु में मेघ-गर्जन की तरंगें दौड़ रही थीं, वह ध्वनि और प्रतिध्वनि से गूँज रही थी। अवतरित होता हुआ क्षुपित व्योम मानों अग्नि द्वारा पृथ्वी से आए हुए मल और दोष की शुद्धि कर रहा हो। शक्रो आहत श्वान की भाँति हिलता हुआ चिल्ला रहा था। मैं वन्य-प्रदेश में झंझावात का ऐसा संपन्न दृश्य देखकर दिव्यलोक में विहार कर रहा था। अलौकिक प्रलय से मंत्र-मुग्ध था, हृदय में शौर्योन्मेष भर गया, भीषण और भयंकर

समन्वय से आत्मा ओत-प्रोत हो गई।

इस अभिनय में भाग लेने के लिये मैं उत्कंठित हो उठा। हृदय में उमड़ते हुए उल्लास को किसी-न-किसी पर प्रकट करने की बलवती आकांक्षा होने लगी। राशीभूत जलदों और ध्वांत की प्रसारिणी रहस्यात्मक शक्ति के समक्ष फट पड़ने की अभिलाषा होने लगी। गगन की प्रदीप्त श्यामल ज्योति मेरी आत्मा में भी प्रज्वलित हो उठी। प्रकृति की विभूति से प्रादुर्भूत हृदय के भाव और आह्लाद को कैसे प्रकट करूँ ? मैंने तारस्वर में गाना आरंभ किया। मेघों का गर्जन, विद्युत् की चमक, पौधों की मंत्रणा और मेरा गायन। प्रकृति के संगीत से मेरे गान का समन्वय जान पड़ा। मैं अचेत हो गया, इसमें मेरी ही सत्ता का लोप था। उत्कंठा हुई कि वन्य-प्रदेश के ऊर्ध्व भाग की इस मनोहर शक्तिशालिनी रमणीकता में विलीन हो जाऊँ। सागर में झंझावात और वन्य-प्रदेश में विद्युन्मय प्रभंजन ये ही दो प्रकृति की विभूतियाँ थीं। अतः मैं चीत्कार कर उठा। मुझे दृढ़ विश्वास था कि इससे किसीको क्लेश न होगा, कोई मेरी आलोचना को उद्यत न होगा। पर सहसा किसीने मेरे पैर थाम लिए। मैं धप्प से जल में गिर पड़ा।

उसके गंभीर और रोषयुक्त नेत्रों से मेरा मुख-मंडल निहार रहा था।

"क्या पागल हो गए ? हूँ ? चुप रहो, चिल्लाओ मत ! नहीं तो गर्दन उतार दूँगा ! समझा ?"

मैंने चकित होकर पूछा कि तुम्हारा क्या बिगड़ा जा रहा था।

"क्यों मैं भय खा रहा था! उधर मेघ-गर्जन, इधर तुम्हारा डींकना। बात क्या थी?"

"मुझे इच्छानुसार गाने का अधिकार है।"—मैंने कहा।

"पर मैं ऐसा नहीं चाहता।"—उसने कहा।

"तो तुम भी गाना छोड़ दो!"-मैंने उसका अनुमोदन किया।

"क्या तुम नहीं गाते?"—शको ने हठपूर्वक कहा।

"मैं गा ही तो रहा था।"

"ठहरो, क्या कहते हो?"—वह कुपित हो गया।

"तुम हो कौन? तुम्हारे न घर-द्वार, न माता-पिता, न कुल-परिवार और न जमीन-जगह। तुम अपने को इतना क्यों लगाते हो? पर मेरे अधिकार में तो सब कुछ है।"

यह छाती पर हाथ पटकने लगा।

"मैं राजकुमार हूँ, और तुम—कोई नहीं—कुछ नहीं। तुम्हारी तरह सभी अपने को सब कुछ समझा करते हैं, पर जिसे दूसरे मानें वही कुछ है। मुझे लोग मानते हैं, जानते हैं। मेरा विरोध मत करो। तुम सेवक हो, तुमने जो मेरी सेवा की है, उससे कई गुना अधिक पारितोषिक तुम्हें दूँगा। बस, मेरी आज्ञा मानो! तुम कहते थे कि ईश्वर की प्रेरणा से मैं बिना पुरस्कार के ही सेवा करता हूँ, पर मैं तो पुरस्कार दूँगा। क्यों तंग करते हो? उपदेश देकर भयभीत करके मुझे अपने जैसा मत बनाओ, तुम ऐसा नहीं कर सकते! थू! थू!"

वह होंठ चाटने लगा, नथनों से साँस लेने लगा। मैं चकित होकर उसे निहार रहा था। वह यात्रा भर में संचित किया हुआ असंतोष, व्यग्रता और रोष उड़ेल रहा था। मुझे विश्वास दिलाने को वह कभी-कभी बिचली उँगली से मेरी छाती पर ठोकर मारता और कंधा पकड़कर झकझोर देता।

जल धारा बाँधकर बरस रहा था। मेघ-गर्जना भी शांत नहीं थी, वह जोर लगाकर चिल्ला रहा था। मैं परिस्थिति के विषाद-पूर्ण प्रसादांत अभिनय से प्रभावित था। मुँह से हँसी का फव्वारा फूट निकला। वह मुँह फेरकर हट गया और थूकने लगा।

(१०)

ज्यों-ज्यों टिफलिस निकट आता जाता, वह उदासीन और अशिष्ट होता जाता। उसके चेहरे से नए-नए मनोभाव लक्षित हो रहे थे।

रास्ते में एक गाँव में भुट्टे के खेत में काम करने को मिला। पर वहाँ के निवासी हमारी भाषा अच्छी तरह नहीं जानते थे, वे हमपर हँसते, बुरा-भला कहते। दो ही दिनों में हम गाँव छोड़कर भागे, क्योंकि उनके वैमनस्य से हमारे कान खड़े हो गए।

गाँव से चार-पाँच कोस दूर चले आने पर उसने कमीज के नीचे से आबेरवाँ का एक थान निकाला और मुझे देखकर गर्व से बोला—"अब काम करने की आवश्यकता नहीं। इसे बेचकर काम चलाओ, घर पहुँचने तक कोई चीज न घटेगी। क्यों?"

मैंने रुष्ट होकर थान छीनकर दूर फेंक दिया और मुँह फेर लिया।

उस गाँव के लोग बड़े खूँखार थे, उन्हें छेड़ना बुरा था। मैंने उनके बारे में एक कथा सुन रखी थी। एक मजदूर ने एक बार लोहे का चम्मच चुरा लिया था। उन लोगों ने तलाशी लेकर माल बरामद किया और कटार भोंककर उसका शरीर चीर डाला। फिर घाव में वही लोहे का चम्मच चुभोने लगे। वन में उसे भाग्य के सहारे छोड़कर वे लौट आए। पथिकों ने उसे मरणासन्न अवस्था में पाया। वह अपनी गाथा सुनाते-सुनाते ही मर गया। लोगों ने हमें उनके बारे में कई बार सावधान किया था। मैंने शक्रो को इसकी याद दिलाई। पहले तो उसने समझा नहीं, पर याद पड़ते ही वह दाँत निकालकर और आँखें तरेर कर चीते की तरह मुझपर टूट पड़ा। थोड़ी देर तक भिड़ंत होती रही, फिर वह रोष से बोला—"बस ! बस !"

थककर हम लोग बैठ गए। वह लोभ-भरी दृष्टि से आबेरवों के थान को ओर देख रहा था। वह बोला—"लड़ क्यों रहे थे ? छी ! छी ! छी ! बड़े अशिष्ट हो ! तुम्हारा माल तो चुराया नहीं ? तुमसे मतलब ? तुम कड़ा परिश्रम करते थे, तुम्हारी ही सहायता के लिये तो चोरी की और तुम ऐसी बात करते हो। शे ! शे !"

मैंने समझाया कि चोरी करना कितना बुरा है।

"अपनी जबान सँभालो, बुद्धू कहीं के !"—उसने घृणापूर्वक कहा।—"मूर्खों मरने पर चोरी न करे तो कोई क्या करे ?"

मैं चुप था। उसके क्रोध से डरता था। यह चोरी उसने दूसरी बार की थी। पहले उसने एक मछुए की जेबघड़ी चुरा

ली थी। उस समय हाथापाही तक की नौबत आ गई थी।

"अच्छा, आओ चलें।"—उसने कहा। कुछ सुस्ता लेने पर हम शांत हो गए, सौहार्द्र हो गया।

हम लोग आगे बढ़े। प्रतिदिन उसकी उदासीनता बढ़ती ही जाती थी। वह अजीब ढंग से भौंहें चढ़ाकर मुझे घूरता।

जब हम दर्रे के पास पहुँचे तो उसने कहा—"कल या परसों हम घर पहुँच जायँगे। शे ! शे !"

हर्ष से उसका मुखमंडल देदीप्यमान हो गया।

"घर पर लोग पूछेंगे, कहाँ रहे ? कहूँगा कि सफर में था। नहाऊँगा, चकाचक खाऊँगा, चैन करूँगा। माँ से कहूँगा—'भूख लगी है।' वह तरह-तरह के पकवान लाकर रख देगी। पिता से आपत्तियों और क्लेशों की चर्चा करूँगा तो वे नहीं बिगड़ेंगे। कोई मजदूर मिलेगा तो उसे एक रुपया दूँगा, ले जाकर शराब पिलाऊँगा। अपनी मजदूरी की कहानी कहूँगा। तुम्हारे बारे में बाबूजी से कहूँगा—'ये मेरे बड़े भाई के समान हैं। मुझे सीख देते थे। इन्हें खूब खिलाइए, साल भर रखिए।"

उसकी बातचीत का यह ढंग मुझे पसंद था। वह बड़ा सीधा शिशु-सा बन जाता। इन बातों से मुझे बड़ा आह्लाद हो रहा था क्योंकि टिफलिस में मेरी और किसीसे जान-पहिचान नहीं थी। शरद्ऋतु आ गई थी। पर्वतों से होकर जाना था, ठंढी वायु से बड़ा कष्ट मिला। मसकत तक हम बड़ी तेजी से आए। दूसरे दिन टिफलिस पहुँच जाने की आशा में थे।

दूर से ही काकेशिया की राजधानी का दृश्य दिखाई पड़ा। दो उत्तुंग पर्वतों के मध्य वह स्थित थी। नियत स्थान में पहुँचते ही यात्रा का अंत था। मैं हर्षित था, पर न जाने क्यों वह शून्य भाव से उधर देखने और थूकने लगा। पेट पर हाथ फेरकर पीड़ा से मुँह बनाता, कचे फल पचे न थे।

"क्या सोचते हो ? क्या रईस होकर मैं इन्हीं कपड़ों से नगर में जाऊँगा ? न, कभी नहीं। रात हो जाय तो चलेंगे। आओ, अभी यहीं आराम करें।"

मैंने बची सुरती कागज में लपेटकर दो सिगरेटें बनाईं। ठंढ से देह काँप रही थी, हम लोग एक टूटी-फूटी दीवाल के नीचे बैठकर सिगरेट पीने लगे। ठंढी वायु शरीर में तीर-सी लगती। वह बैठकर एक विषाद-पूर्ण गाना गाने लगा। मैं बैठे-बैठे स्वप्न देख रहा था कि अब यात्रा समाप्त हो गई, चलकर भलीभाँति निवास करूँगा, शीत से पिंड छूटेगा।

"अब चलो चलें।"—उसने कहा।

अँधेरा हो गया था। नगर में दीपक टिमटिमाने लगे थे। उपत्यका में अवस्थित नगर में कुहासे के बीच उनका जगमगाना दर्शनीय था, बड़ा मनोरम दृश्य था।

"जरा अपना कंटोप तो देना, मैं मुँह ढँक लूँ। कहीं लोग देख न लें!"

मैंने कंटोप दे दिया। वह जोर से सीटी देने लगा।

"अच्छा, जाओ सामने पुल पर मुझे परखो, मजदूर यहीं

ठहरते हैं। मैं पास में एक मित्र से भेंट कर लूँ। घर का हाल-चाल पूछ लूँ।"

"देर तो न होगी ?"

"बस, क्षण भर में आया।"

वह पास की एक अँधेरी और संकीर्ण गली में सर्र से घुस गया। गायब हो गया—सदा के लिये गायब हो गया।

फिर कभी उससे भेंट नहीं हुई। वह चार महीने मेरे साथ रहा। अब तो प्रसन्न चित्त से मन-ही-मन मुसकुराता हुआ उस का स्मरण किया करता हूँ।

उससे मैंने बहुत कुछ सीखा। दार्शनिकों के मोटे-मोटे पोथों में भी वे बातें न मिलेंगी। जीवन का ज्ञान नर-ज्ञान से गंभीर और विशाल होता है।

डाकू और किसान

(कथामुख)

दक्षिण का नीला आकाश जहाज की धूल से धुँधला हो रहा है। नीले समुद्र में ज्वलंत सूर्य झाँक रहा है। जान पड़ता है, उसपर मटमैला पर्दा पड़ा है। उसे पानी में अपना प्रतिबिंब नहीं दिखाई देता, क्योंकि डाँडों की चोट, स्टीमरों के वंद, जहाजों के गहरे तेज सलपट, आगे बढ़ते हुए पानी को चंचल कर रहे हैं, जनाकीर्ण बंदर को मथे डाल रहे हैं। समुद्र की स्वच्छंद लहरें पथरीली प्राचीरों से परिवेष्टित हैं, जहाजों के बोझ से दबी हैं। वे जहाजों के अगल-बगल और तट पर टक्कर मार रही हैं। टकराती हैं, पीछे हटती हैं, मथ जाने से फेनिल हो जाती हैं एवं त्रिविध प्रकार की खलभली से मटमैली-सी हो रही हैं।

लंगड़ के सिकड़ खनखना रहे हैं। ठेलागाड़ियों की कड़ियाँ खड़खड़ा रही हैं। पत्थर के फर्श पर लोहे की चद्दरों के गिरने की भड़भड़ाहट हो रही है। काठ का भद्-भद् शब्द हो रहा है। भाड़े के लिये घूमती हुई गाड़ियों की हड़हड़ाहट हो रही है। स्टीमरों का घंटा बज रहा है। बड़ा कर्कश और भीषण कोलाहल मचा है। डक पर मजदूरों, यात्रियों और कर्मचारियों की चिल्लाहट है। सब प्रकार के शोरगुल मिलकर कान बहरे किए दे रहे हैं। काम के दिन का-सा तुमुल स्वर हो रहा है। बंदरगाह के ऊपर यह शोर अनिश्चित रूप से गूँज रहा है। मानों वह ऊपर

जाकर नष्ट होने से डर रहा है। नई-नई ध्वनियाँ पृथ्वी से उठ उठकर बराबर उसमें मिल रही हैं। गहरी, गूँजती हुई उ ध्वनियाँ चारों ओर जाती और काँप उठती हैं। वायु धूलि और धुँधली है! कोलाहल की कर्कशता से कान फटे जा रहे

पत्थर, लोहा, काठ, बंदर का फर्श, जहाज और मनुष्य भीषणता के साथ कोलाहल कर रहे हैं, पर मनुष्यों का शब्द इसमें कठिनाई से सुन पड़ता है। मनुष्यों की आवाज धीमी है, उपहासजनक है। शब्द करनेवाले मनुष्य स्वयं ही उपहासास्पद और दयनीय हैं। मनुष्यों का आकार छोटा रहता है, वे उदास रहते हैं, जीर्ण-शीर्ण होते हैं, मंद-मंद चलते हैं। पीठ पर लदा बोझ और चिंताओं का भार उन्हें कभी इधर कभी उधर फिराया करत है। वे धूल के बवंडर में पड़े रहते हैं, झुलसा देनेवाली गर्मी और कोलाहल के सागर में रहते हैं, तुलना में विशाल लोहे के राक्षसों से, बोझ लादनेवाले इन पर्वतों से, बिजली की तरह कड़कनेवाली रेलगाड़ियों से और इनके द्वारा होनेवाली ध्वनि आदि से बहुत साधारण—बहुत छोटे हैं। उन्हींकी निर्मित वस्तुओं ने उन्हें अपना दास बना लिया है, उनका एकांत जीवन छीन लिया है!

विशाल और भारी स्टीमरों से भाप निकल रही है, सीटि और भोंपे बज रहे हैं, वे गहरी साँस लेते जान पड़ते हैं। इन लो निर्मित पदार्थों से निकली हुई प्रत्येक ध्वनि मानों मलिन वेष के मनु पर घृणा से हँस रही हो। लोग धीरे-धीरे जहाजों के डक की मि जा रहे हैं। वे जहाज के बड़े-बड़े कमरे मजदूरों की तरह मि

घरके सामान से भर रहे हैं। डक में काम करनेवाले मजदूरों की विशाल मंडली बड़ी दयनीय और उपहासजनक है। वे अपनी पीठ पर लाखों मन रोटियाँ लादकर जहाज के लौह-निर्मित उदर में झोंक रहे हैं। पेट भरने के लिये उन्हें इसके बदले दो-चार सेर ही रोटियाँ मिलेंगी; क्योंकि वे अभागे हैं, लोहे के नहीं बने हैं। भूख और क्लेश सहने को ही जी रहे हैं। मनुष्य जर्जरित हैं, पसीने में डूबे हैं, थकावट, कोलाहल और गर्मी से सुस्त पड़ गए हैं। मनुष्यों की बनाई हुई भारी-भारी मशीनें धूप में चमक रही हैं, अघाई हुई हैं, प्रसन्न हैं। मशीनें वस्तुतः भाफ से नहीं चलतीं—वे अपने बनानेवालों के खून और माँस की बदौलत चलती हैं। इस तुलना में सारी रचना क्रूरता और निर्दयता से भरी दिखाई देती है।

घोष के कारण जी ऊब उठता है, धूल से नाक भर जाती है, आँखें अंधी पड़ जाती हैं। झुलसानेवाली गर्मी से शरीर पक उठता है, सुस्त पड़ जाता है। मकान, मनुष्य, फर्श सभी व्याकुल हैं, फटे पड़ रहे हैं, धैर्य खोए दे रहे हैं। सभी कोलाहल के प्रवाह में पड़े हैं। उसपर कोई भारी विपत्ति घहरानेवाली है, विस्फोट होनेवाला है। इस विस्फोट के अनंतर ही स्वच्छंदता से साँस ली जा सकेगी, क्योंकि इसके कारण वायु बदल जायगी। पृथ्वी पर शांति विराजेगी। यह भद्दा, बहरा कर देनेवाला, रगरग में सुस्ती भर देनेवाला, उदासीनता और उन्माद उत्पन्न करनेवाला कोलाहल दूर हो जायगा। नगर में, समुद्र में और आकाश में शांत, प्रसाद-पूर्ण और स्वच्छ वातावरण छा जाएगा। पर यह कल्पना ही-

कल्पना है। ऐसी भावना उठने का कारण यह है कि मनुष्य उत्तम वस्तुओं की लालसा से अभी थका नहीं है, उसमें स्वतंत्र होने की अभिलाषा अभी मरी नहीं है।

टन-टन करके बारह बार घंटा घनघनाया। जब घंटे की आखिरी ध्वनि बंद हो गई, तो श्रम का भी जंगली संगीत आधा हो गया। क्षणभर बाद कोलाहल अवसाद और विषाद में परिणत हो गया। अब मनुष्यों का शब्द और समुद्र का उद्‌घोष अधिक स्पष्ट सुन पड़ता है। भोजन करने का समय हो गया है।

(१)

डक के मजदूर काम खतमकर कोलाहल करते हुए इधर-उधर टोलियाँ बाँधकर तितर-बितर हो गए। वे फेरीवाली स्त्रियों से अनेक प्रकार की भोजन-सामग्री खरीदने लगे। फिर फर्श के छायादार स्थानों में खाने के लिये जा बैठे। इसी समय उनके बीच ग्रिश्का शेलकश आया। वह शिकारी भेड़िये की तरह भीषण था डक के लोग इसे अच्छी तरह जानते थे। वह पक्का शराबी, बड़ा साहसी एवं कुशल चोर था। वह नंगे सिर और नंगे पैर था। ऊन के चिथड़ों का बना पाजामा था, जिसके सूत के फुथड़े निकल आए थे। वह भद्दी छापेदार कमीज पहने था। गले में फटा हुआ कालर झूल रहा था। उसके भूरे चमड़े में सूखी और सुडौल हड्डियाँ भलीभाँति ढकी थीं। उसके काले और कुछ-कुछ भूरे बाल छितरे हुए थे। आँखें चढ़ी हुई और स्थिर थीं। चेहरा धूर्तता-पूर्ण था। साफ मालूम हो रहा था कि वह अभी जागा है।

उसकी मूँछों में एक ओर एक तिनका सट गया था। कड़े और रूखे बालोंवाले मुड़े हुए गाल में बाईं ओर दूसरा तिनका चिपका था। उसने अपने कान पर नीबू की हरी-हरी कोंपल खोंस ली थी। वह लंबा था, हड्डियाँ उभड़ी हुई थीं, कमर झुकी थी। वह धीरे-धीरे पत्थर के फर्श पर डग भर रहा था। उसकी टेढ़ी धूर्तता-पूर्ण नाक इधर-से-उधर हो रही थी। वह इधर-उधर तीव्र दृष्टि डाल रहा था। उसकी भूरी-भूरी स्थिर आँखें चमक रही थीं। वह एक के बाद एक करके डक के मजदूरों को घूरने लगा। उसकी घनी, लंबी और भूरी-भूरी मूँछें शेर की मूँछों की तरह बराबर फड़रा रही थीं। उसके हाथ पीछे थे, वह टेढ़ी-टेढ़ी और लंबी उँगलियों को उमेठ रहा था। एक हथेली में दूसरी हथेली सटी हुई थी। वहाँ पर उसके जैसे सैकड़ों बदमाश चक्कर काट रहे थे। पर उसने अपनी जंगली गृद्ध की-सी आँखों से सबको आकृष्ट कर लिया। उसकी तीक्ष्ण दृष्टि में हृदयपने की क्षीण रेखा थी, गति में विचित्रता थी, मानों वह अपने शिकार पर ताक लगाए हो। देखने में उसका रूप सादा और सरल था। पर उसकी दृष्टि में बाज की-सी तेजी, चैतन्यता और ध्यानमग्नता थी।

वह डक के मजूरों की एक टोली के पास पहुँचा। वे चिथड़े पहने हुए, कोयले के ढेर के पास छाया में आराम कर रहे थे। उसके पहुँचते ही उनमें से एक नवयुवक उससे मिलने को उठा। वह मोटे डील-डौल का था, उसके उदास चेहरे पर काले-काले दाग थे, उसकी गर्दन पर घाव के चिह्न थे। जिन्हें देखने से जान

पड़ता था कि उसे कुछ ही दिन पूर्व कहीं चोट खानी पड़ी है। युवक उठकर शेलकश के पास आया और धीमे स्वर में बोला—"डक के अफसरों को माल के दो मामलों का पता चला है। वे तहकीकात कर रहे हैं, सुनते हो ग्रिश्का !"

"तो इससे क्या ?"—शेलकश ने शांत भाव से पूछा। वह युवक को घूर रहा था।

"तो इससे क्या' कैसा ? मैं कह रहा हूँ, वे तहकीकात कर रहे हैं। समझे !"

"तो क्या वे तहकीकात में मेरी मदद चाहते हैं ?"

शेलकश रूखी मुसकान के साथ पुलिस-चौकी की ओर देखने लगा।

"तुम भाड़ में जाओ !"

उसका साथी मुड़कर चलने लगा।

"ए ! जरा ठहरो ! तुम्हें इस तरह सजाया किसने है ? तुम्हें साइनबोर्ड-सा कैसा सुहावना बना दिया है ! तुमने यहाँ मिश्का को देखा है ?"

"अभी तक तो वह नहीं दिखाई पड़ा।"—युवक ने कहा। वह तेजी से अपने साथियों के पास जा बैठा।

शेलकश आगे बढ़ा। सबने परिचित व्यक्ति की तरह उसको प्रणाम किया। वह था तो बड़ा आनंदी और विनोदी जीव पर आज उसमें हँसी का नाम न था। उससे जो बात पूछी जाती, उसका उत्तर वह संक्षेप में ही दे डालता।

माल के ढेर के पीछे से एक अफसर बाहर निकला। वह काला-काला मटमैले रंग का था। उसकी चाल में फौजी शान-शौकत थी। उसने शेलकश को सामने से आकर छेंक लिया, धकड़कर खड़ा हो गया। उसका बाँयाँ हाथ कटार की मूठ पर था। दाहिना हाथ बढ़ाकर वह शेलकश का कालर पकड़ने के लिये लपका।

"ठहरो! कहाँ जा रहे हो?"

शेलकश एक कदम पीछे हट गया। उसने अपनी आँखें ऊपर कीं, अफसर को देखा और रुखाई से मुसकुराया।

अफसर के लाल रोबीले चेहरे पर धमकी का भाव झलकने लगा। चेहरा कुछ फूल आया, गोल हो गया और सुर्ख पड़ गया। त्यौरियाँ चढ़ गईं, आँखें नाच उठीं, बड़ा विलक्षण असर हुआ।

"तुमसे कई बार कहा गया कि डक में पैर रखा तो पसलियाँ तोड़ दी जायँगी और तुम फिर आ गए!"—अफसर ने गरजते हुए धमकाया।

"कहो, सिमनिच, कैसे रहे? बहुत दिनों बाद भेंट हुई!"—शेलकश ने शांत भाव से उसकी खैरियत पूछी और अपना हाथ आगे बढ़ा दिया।

"अच्छा हो, तुम्हें कभी न देखें। यहाँ से जाओ, हटो।"

फिर भी सिमनिच ने उससे हाथ मिलाया।

"तुम ऐसा कहते हो!"—शेलकश बोला। वह अपनी मज़-बूत उँगलियों से सिमनिच का हाथ पकड़े हुए था और मित्र की

तरह हाथ मिला रहा था।—"यह तो बताओ तुमने मिश्का को तो नहीं देखा?"

"मिश्का, हूँ, मिश्का कौन? मैं मिश्का-फिश्का को नहीं जानता। यहाँ से चले जाओ। नहीं तो इन्स्पेक्टर तुम्हें देख लेगा। वह—"

"वही सुनहले केशोंवाला मनुष्य। जो पिछली बार हमारे साथ था।"—शेलकश ने आग्रहपूर्वक कहा।

"यों कहो कि जो मेरे साथ डाका डालता है। वह तुम्हारा मिश्का अस्पताल में पड़ा है। लोहे के छड़ से उसका पैर कुचल गया है। अच्छा, अब यहाँ से चले जाओ। भलेमानुसों की तरह कहा जाता है चले जाओ, नहीं तो नटुआ चाँप दूँगा।"

"ओहो! ऐसा ही तो करोगे! तुम कहते हो मैं मिश्का को नहीं जानता! क्यों सिमनिच, तुम इतना आपे से बाहर क्यों हो रहे हो?"

"ग्रिश्का, फिर कहता हूँ, क्यों अपने दाँत तुड़वाने को लगे हो, जाओ?"

अफसर क्रुद्ध हो उठा। वह इधर-उधर देखकर शेलकश के पुष्ट पंजे से अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा। शेलकश शांत भाव से निहार रहा था, मूँछों के भीतर से मुसकुरा रहा था। वह हाथ को छोड़ाता ही न था, बातें ही करता जा रहा था।

"हड़बड़ाओ मत। जरा गप-शप कर लूँ, फिर जाता हूँ। आओ, कहो कैसा कट रहा है? लड़के-बाले तो अच्छे हैं?"—

सके बाद उसकी आँखें ईर्ष्यापूर्ण भाव से दमक उठीं। विनोदपूर्ण मुसकान से उसके दाँत खुल गए। वह बोला—"मैं बहुत दिनों से तुमसे मिलने का विचार कर रहा हूँ, पर समय ही नहीं मिलता। मैं शराब से छुट्टी ही नहीं पाता, क्या करूँ!"

"अच्छा-अच्छा, छोड़ो! अपना मजाक बंद करो, दुष्ट कहीं के! अजी, मैं जिम्मेदारी का काम करता हूँ। तो क्या यहाँ तुम मकानों और सड़कों पर डाका डालने चले हो?"

"किसलिये? जिंदगी काटने के लिये यहीं काफी माल है—तुम्हारे और मेरे दोनों के लिये। ईश्वर की सौगंध, सिमनिच, काफी माल है! अच्छा, तुम चोरी के दो मामलों की तहकीकात कर रहे हो, एँ? सावधान! सिमनिच, समझ-बूझकर खोज करना। किसी-न-किसी दिन फंदे में पड़ जाओगे।"

शेलकश की ढिठाई से सिमनिच क्रुद्ध हो गया। उसका चेहरा नीला पड़ गया। वह कुछ कहने के लिये उतावला हो रहा था, कुड़कुड़ा रहा था। शेलकश ने उसका हाथ छोड़ दिया, बड़ी मस्ती के साथ डक के फाटक की ओर बढ़ा। अफसर क्रोध से बड़बड़ाता हुआ उसके पीछे-पीछे चला। शेलकश और भी प्रसन्न हो उठा। वह दाँतों से जोर से सीटी दे रहा था। हाथ पाजामे की जेबों में थे। निठल्ले आदमी की तरह मस्तानी चाल से चल रहा था। वह दाहिने-बाएँ लोगों पर फबतियाँ छोड़ रहा था। उसे जवाब भी वैसा ही मिलता था।

"अजी, मिश्का, वे तुम्हारी कैसी खुशामद करते हैं! अपन

खानातलाशी दे न दो ?"—डक पर आराम करते हुए मजदूरों में से एक ने कहा।

"मैं नंगे पैर हूँ। सिमनिच इस ताक में है कि मेरे पैर किसी चीज को हड़प न जायँ।"—शेलकश ने जवाब दिया।

वे दोनों फाटक के पास पहुँचे। दो सिपाहियों ने शेलकश को पकड़कर धीरे से धक्का दिया और सड़क पर ढकेल दिया।

"जाने न पावे!"—सिमनिच ने कड़ककर कहा। वह डक के पीछे रह गया था।

शेलकश सड़क पार करके सराय के सामने एक पत्थर पर बैठ गया। डक के फाटक से खड़-खड़ करती हुई असंख्य ठेलागाड़ियाँ कतार बाँधे निकलीं। इधर उनका माल लादने के लिये खाली गाड़ियाँ हड़हड़ाती हुई आईं। ठेलनेवाले झोंके में कभी झुक जाते कभी ऊपर उठ जाते। डक में कोलाहल हो रहा था। धूल उड़ रही थी। चारों ओर अँधेरा था।

शेलकश इस कोलाहल के सुनने में अभ्यस्त था। सिमनिच की बातचीत से वह उत्तेजित हो गया था। पर यहाँ पहुँचते ही आनंद से नाच उठा। उसके सामने बहुत-सी वस्तुएँ थीं। वे उसका मन बरवस खींचे लेती थीं। उनके उड़ाने के लिये थोड़े परिश्रम और कौशल मात्र की आवश्यकता थी। शेलकश को विश्वास था कि उसमें कौशल बहुत अधिक है। वह अर्ध-निमीलित नेत्रों से स्वप्न-सा देख रहा था कि कल सवेरे किस प्रकार काम करूँगा। काम हो लेने पर किस प्रकार मेरी जेब में रुपये

ठनठनाने लगेंगे। इसके बाद वह अपने साथी मिरका की बात
चने लगा। यदि उसके पैर में चोट न लगी होती तो आज रात
वह बहुत काम आता। शेलकश ने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि
रका के बिना भी जैसे हो सकेगा मैं सब कुछ सँभाल रखूँगा।
आज की रात कैसी गुजरेगी? शेलकश ने आकाश की ओर देखा
और फिर सड़क पर दृष्टि डाली। उससे पाँच-छः कदमों की दूरी
र पत्थर के खंभे पर ओठँगा हुआ एक युवक दिखाई पड़ा।
मामूली फलालैन की काली कमीज थी। पाजामा भी वैसा ही था।
र में चिमड़े चमड़े का जूता था। सिर पर फटी हुई लाल-लाल
टोपी थी। उसके पास ही छोटा-सा थैला पड़ा था, बिना मुठिया
की हँसिया रखी थी और डोरी से भली-भाँति बँधी हुई घास की
गठरी भी रखी हुई थी। नवयुवक के कंधे चौड़े थे। शरीर गठीला था,
सिर पर बाल बिखरे थे, चेहरा धूप और हवा से मुरझा गया था,
आँखें बड़ी-बड़ी और नीली थीं। वह शेलकश को बड़े सरल भाव
से निहार रहा था।

शेलकश उसे देखकर बेतरह हँसने लगा। जीभ निकाल ली,
चेहरे को डरावना बना लिया और आँखें फाड़कर घूरने लगा।

नवयुवक पहले तो चकपकाकर आँखें मिलमिलाने लगा, फिर
सहसा खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला—"ओह! तुम तो
हो विचित्र जीव हो!"—वह उठा और लुढ़कता हुआ शेलकश
की ओर बढ़ा। उसका थैला धूल में घसिट रहा था और हँसिया
खट्-खट् पत्थर से टकराती जाती थी।

"ओह, तुम तो नशे में हो, साफ जान पड़ता है।"—उस पाजामा सँभालते हुए शेलकश से कहा।

"हाँ, हाँ, पी है। हाँ, ठीक कहते हो।"—शेलकश ने स्पष्ट कह दिया। वह उस स्वस्थ, सीधे और शिशु-नेत्र नवयुवक को फँसाने लगा।—"हँसिया से घास काट रहे थे, क्यों ?"

"हाँ, दस पैसे के लिये बीघों खेत काटना पड़ता है ! कितना मंदा काम है ! अकाल-पीड़ित देशों से दल-के-दल चले आ रहे हैं। मजदूरी घट गई है, चाहे जहाँ जाओ। कूबन शहर में पंद्रह आने मिलते हैं। पहले छ रुपये, आठ रुपये, दस रुपये तक मिलते थे।"

"पहले ! पहले क्यों, वे तो रूसी को देखते ही पाँच-छः रुपये यों ही दे देंगे। दस बरस पहले मैं यही रोजगार किया करता था।" यदि किसीको काम न मिलता तो वह जाकर कहता—'मैं रूसी हूँ'—बस, वे आकर देखते, उसे छूते, आश्चर्य करते, और उसे पाँच-छः रुपये मिल जाते। वे खाने-पीने का भी प्रबंध करते, चाहे तुम जब तक पड़े रहो।"

नवयुवक ने शेलकश की बातें सुनकर आश्चर्य से मुँह फैला दिया, चेहरा आनंद से झलक रहा था। जब उसने समझा कि बुड्ढा गप्प मार रहा है तो ठहाका मारा और मुँह बंद कर लिया। शेलकश का चेहरा गंभीर था, उसकी मुसकान मूँछों में ही छिपी थी।

"अजी तुम बड़े विचित्र जीव हो, ऐसी गप्प उड़ाते हो मानों सच हो, मैं इसे कोई सच्ची खबर समझ रहा था। न, हृदय से कहता हूँ, पहले—"

"क्यों, मैंने क्या कहा ? सच कहता हूँ, पहले किस प्रकार—"

"कहते चलो !"—युवक ने हाथ हिलाते हुए कहा।—"तुम मोची हो ? या दर्जी ? कौन हो ?"

"मैं ?"—शेलकश ने पूछा। वह क्षणभर सोचता रहा और फिर बोला—"मैं मछुआ हूँ।"

"मछुआ ! सचमुच ? तुम मछली पकड़ते हो ?"

"मछली ही क्यों ? यहाँ के मछुए केवल मछली ही नहीं पकड़ते, वे डूबे हुए मनुष्यों, पुराने लंगरों, जलमग्न जहाजों, और ऐसी ही बहुत-सी चीजों का शिकार कहीं अधिक करते हैं। उनके पास मतलब की सभी कँटियाँ हैं।"

"हाँ ठीक ! ऐसे शिकारी वे ही होंगे जो गाया करते हैं—

हम पसारते अपना जाल।

सूखे तट पर फैलाते हैं दिखता जहाँ अन्न औ माल।"

"क्यों, क्या तुमने कोई ऐसा शिकारी देखा है ?"—शेलकश ने पूछा। वह युवक को मुँह बनाकर देख रहा था। सोच रहा था कि नवयुवक बड़ा दुष्ट है।

"न, मने उन्हें देखा तो नहीं ! कहते सुना है।"

"उन्हें पसंद करते हो ?"

"उन्हें पसंद करना ? हो सकता है। वे जो करते हैं ठीक करते हैं—बड़े बहादुर जीव होते हैं—एकदम स्वच्छंद।"

"और तुम्हारी स्वच्छंदता कैसी है ? क्या तुम्हें उसकी कामना है ?"

"हाँ, मैं तो ऐसा ही समझता हूँ! अपने स्वामी स्वयं बने जहाँ इच्छा हो जायँ, जो मनमें आवे करें। सचमुच! यदि तुम्हें स्वयं अपने तन और मन से काम लेने का ढंग आता है किसी प्रकार का बोझ ऊपर नहीं लदा है, तो अति उत्तम! मनमाने मौज उड़ाओ, पर ईश्वर का ध्यान रखो।"

शेलकश घृणा से थू-थू करने लगा। बात-चीत बंद कर दी मुँह फेर लिया।

"मुझे ही देखो"--युवक सहसा उत्तेजित होकर बोला—"बाप मर गया, जमीन बहुत थोड़ी है, माँ बूढ़ी है, देश में सूखा पड़ा है। बोलो, क्या करूँ? जिंदगी काटनी ही पड़ेगी। कैसे काटूँ? किससे कहूँ? क्या विवाह किसी धनी के घर होना संभव है? और यदि हो तो लड़की का हिस्सा अलग कर दिया जाय तब न, फिर क्या पूछना चैन से कटने लगे। पर यह होने का नहीं। न, ससुरा इसे माने तब न! मुझे तो उसका गुलाम बनना पड़ेगा। बरसों तक—जिंदगी भर। कैसी मजेदार बात है, देखा! पर यदि मैं दो-तीन सौ रुपये पैदा कर लूँ, अपने पैरों आप खड़ा हो जाऊँ। फिर तो बूढ़े से रुख न मिलाऊँ और साफ कह दूँ—मार्फा का हिस्सा अलग कर दोगे? नहीं? तो अच्छी बात है, राम भजो। गाँव भर में क्या यही एक अनोखी लड़की है? तात्पर्य यह कि एकदम स्वच्छंद हो जाऊँ—बिलकुल स्वतंत्र। हाय!"—नवयुवक ने गहरी साँस ली—"पर ऐसा है कहाँ! ब्याह करके ससुर के घर सड़ना है। सोच रहा था कि कहीं बाहर चला जाऊँ

और वहाँ से दो-चार सौ रुपये पैदा कर लाऊँ। भला आदमी बन जाऊँ। पर कहीं जा न सका। कुछ भी न हो सका। अब तो जान पड़ता है—ससुर के यहाँ ही पोसना होगा। मजदूर बनना पड़ेगा। क्योंकि अपने-आप कुछ कर सकता नहीं—किसी तरह भी नहीं। हाय राम!"

युवक को ससुर के यहाँ घँघुआ बनकर रहना एकदम पसंद नहीं था। उसका चेहरा स्याह पड़ गया, धुँधला पड़ने लगा। वह जमीन पर लुढ़कता हुआ, खिसककर आगे बढ़ा, जिससे शेलकश का ध्यान भंग हो गया। युवक की गाथा सुनते-सुनते वह तल्लीन हो गया था।

शेलकश की इच्छा अब उससे बात करने की नहीं थी। फिर भी उसने दूसरा प्रश्न किया—"अब तुम कहाँ जा रहे हो?"

"क्यों, जाऊँ कहाँ? घर ही जाऊँगा।"

"किंतु यार, विश्वास नहीं होता, कहीं तुम इधर ही से टर्की चले जाओ।"

"टर्की!"—युवक धीमे स्वर में बोला। अजी कोई भला साई वहाँ जाता भी है? न, मैं नहीं जाता।"

"अरे मूर्ख!"—शेलकश ने गहरी साँस ली। उसने फिर मुँह फेर लिया। युवक से एक शब्द भी न बोलने का दृढ़ विचार कर लिया। उस गठीले ग्रामीण युवक ने उसके हृदय में कोई भावना जागरित कर दी थी। वह स्वभावतः झुँझला उठा। आज रात को कैसे क्या होगा, इसके सोचने-विचारने में बाधा होने लगी।

युवक खड़ा-खड़ा कुछ कुड़मुड़ा रहा था। वह रह-रहकर शेलकश को विचित्र ढंग से देखता। उसके गाल गेंद की तरह फूल गए थे। ओंठ खुले थे। आँखें ऊपर चढ़ गई थीं, तेजी से घूम रही थीं। उसे यह आशंका नहीं थी कि यह शराबी गिरहकट मेरी बातों का यकायक ऐसा अपमान कर बैठेगा। गिरहकट ने भी फिर उसपर कोई ध्यान नहीं दिया। पत्थर पर बैठे-बैठे वह मस्ती से गुनगुना रहा था। अपनी नंगी और मैली एड़ी से ताल दे रहा था।

युवक किसान उससे भिड़ना चाहता था।

"क्यों जी, मछुए! सुनते हो! क्या तुम इसी तरह बहुधा मद-मस्त हो जाया करते हो?"—वह कही रहा था कि मछुए ने यकायक उसकी ओर मुँह फेरा और पूछा—"अरे! छोकड़े! क्या आज रात में मेरे साथ काम करेगा? क्यों? जल्दी बोल!"

"कैसा काम?"—युवक ने अविश्वास से पूछा।

"कैसा! जिसमें तुम्हें लगाऊँ! हम लोग मछली मारने जा रहे हैं। तुम नाव खेना!"

"अच्छा, स्वीकार है। कोई चिंता नहीं, यही काम सही। पर मैं तुम्हारे साथ झमेला नहीं करना चाहता, तुम बड़े गुरु घंटाल हो।"

शेलकश मन-ही-मन रोष से जल रहा था, क्रोध को रोकते हुए धीमे स्वर में बोला—"अच्छा जबान बंद करो, मनमें जो

याहो समझो, पर जबान मत खोलना, नहीं तो खोपड़ी में ऐसा डंडा जमाऊँगा कि सारा हौसला पस्त हो जायगा।"

वह पत्थर पर उछल पड़ा, बाँएँ हाथ से मूँछें उमेठने लगा और दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँध ली, जो लोहे की तरह कठोर थी। आँखें दमदमाने लगीं।

युवक सहम गया। वह हड़बड़ाकर इधर-उधर देखने लगा। उसकी आँखें मिलमिलाने लगीं। वह भी उछलकर खड़ा हो गया। दोनों एक-दूसरे को घूर रहे थे, चुपचाप खड़े थे।

"क्यों रे ?"—शेलकश ने रोष से पूछा। भीतर-ही-भीतर वह उबल रहा था। छोकड़े के दुर्व्यवहार से उसका सारा शरीर काँप रहा था। वह तो छोकड़े से घृणा कर रहा था और वह थकता ही जाता था। पर अब उससे इसलिये घृणा करने लगा कि उसकी आँखें मनोहर और नीली-नीली थीं, स्वास्थ्य अच्छा था, चेहरा सूर्य की तरह चमचमाता था और भुजाएँ विशाल और सुदृढ़ थीं। युवक के गाँव था, गाँव में घर था। एक धनी किसान उसे अपना दामाद बनाना चाहता था। उसका भूत और भविष्य सब सुखपूर्ण था। शेलकश के सामने कल का छोकड़ा स्वतंत्रता का प्रेमी बनता था—वैसी स्वतंत्रता का जिसकी न तो उसे आवश्यकता ही थी और न रुचि। यह कैसी बेढंगी बात है कि मनुष्य जिसे अपने से बुरा या नीच समझता है उसीकी चाल वह भी चलने लगता है—उसे भी उसीकी तरह वस्तुएँ प्रिय और अप्रिय लगने लगती हैं—अर्थात् वह भी उसीकी कोटि में पहुँच जाता है।

युवक खड़ा-खड़ा कुछ कुड़मुड़ा रहा था। वह रह-रहकर शेलकश को विचित्र ढंग से देखता। उसके गाल गेंद की तरह फूल गए थे। ओंठ खुले थे। आँखें ऊपर चढ़ गई थीं, तेजी से घूम रही थीं। उसे यह आशंका नहीं थी कि यह शराबी गिरहकट मेरी बातों का यकायक ऐसा अपमान कर बैठेगा। गिरहकट ने भी फिर उसपर कोई ध्यान नहीं दिया। पत्थर पर बैठे-बैठे वह मस्ती से गुनगुना रहा था। अपनी नंगी और मैली एड़ी से ताल दे रहा था।

युवक किसान उससे भिड़ना चाहता था।

"क्यों जी, मछुए! सुनते हो! क्या तुम इसी तरह बहुधा मद्-मस्त हो जाया करते हो?"—वह कही रहा था कि मछुए ने यकायक उसकी ओर मुँह फेरा और पूछा—"अरे! छोकड़े! क्या आज रात में मेरे साथ काम करेगा? क्यों? जल्दी बोल!"

"कैसा काम?"—युवक ने अविश्वास से पूछा।

"कैसा! जिसमें तुम्हें लगाऊँ! हम लोग मछली मारने ज रहे हैं। तुम नाव खेना!"

"अच्छा, स्वीकार है। कोई चिंता नहीं, यही काम सही पर मैं तुम्हारे साथ झमेला नहीं करना चाहता, तुम बड़े गुरु घंटाल हो।"

शेलकश मन-ही-मन रोष से जल रहा था, क्रोध को रोकते हुए धीमे स्वर में बोला—"अच्छा जबान बंद करो, मनमें जो

चाहो समझो, पर जबान मत खोलना, नहीं तो खोपड़ी में ऐसा
डंडा जमाऊँगा कि सारा हौसला पस्त हो जायगा।"

वह पत्थर पर उछल पड़ा, बाँएँ हाथ से मूँछें उमेठने लगा
, जो लोहे की तरह कठोर थी।

डुंक सहम गया। वह हड़बड़ाकर इधर-उधर देखने लगा।
उसकी आँखें मिलमिलाने लगीं। वह भी उछलकर खड़ा हो गया।
दोनों एक-दूसरे को घूर रहे थे, चुपचाप खड़े थे।

"क्यों रे ?"—शेलकश ने रोष से पूछा। भीतर-ही-भीतर वह
हँस रहा था। छोकड़े के दुर्व्यवहार से उसका सारा शरीर काँप
रहा था। वह तो छोकड़े से घृणा कर रहा था और वह बकता हो
जाता था। पर अब उससे इसलिये घृणा करने लगा कि उसकी आँखें
मनोहर और नीली-नीली थीं, स्वास्थ्य अच्छा था, चेहरा सूर्य को
ए चमचमाता था और भुजाएँ विशाल और सुदृढ़ थीं।
उसके गाँव था, गाँव में घर था। एक धनी किसान उसे अपना
दामाद बनाना चाहता था। उसका भूत और भविष्य सब सुखपूर्ण
था। शेलकश के सामने कल का छोकड़ा स्वतंत्रता का प्रेमी बनता
—वैसी स्वतंत्रता का जिसकी न तो उसे आवश्यकता ही थी
और न रुचि। यह कैसी बेढंगी बात है कि मनुष्य जिसे अपने से
छोटा या नीच समझता है उसीकी चाल वह भी चलने लगता
—उसे भी उसीकी तरह वस्तुएँ प्रिय और अप्रिय लगने लगते
—अर्थात् वह भी उसीकी कोटि में पहुँच जाता है।

युवक किसान समझ गया कि शेलकश मुझसे कुछ काम लेना चाहता है।

"अच्छा"—वह बोला—"मुझे कोई आपत्ति नहीं, मुझे काम पसंद है। काम तो मैं खोज ही रहा था। किसी-न-किसी के यहाँ तो काम करना ही पड़ेगा, चाहे आप हों, चाहे और कोई। मेरा तात्पर्य केवल यही था कि आप काम-काजी नहीं जान पड़ते, आप तो चिथड़े लपेटे हैं। पर इसका क्या, समय पड़ जाने पर सभी की हालत खराब हो जाती है। राम-राम! क्या मैंने कहीं पियक्कड़ देखा ही नहीं? बहुत से देखे हैं। आपसे बहुत खराब!"

"अच्छा, अच्छा, तो तुम्हें स्वीकार है?"—शेलकश ने सहृदयता से कहा।

"मैं? हाँ-हाँ, बड़ी खुशी से! मजदूरी ठहरा लीजिए।"

"सो तो काम के अनुसार होगी। जैसा काम सधे। जितन माल हाथ लगे, बस यही नौ-दस रुपये मिलेंगे, समझा?"

पर यह रुपयों का प्रश्न था। इस बारे में किसान मामल साफ कर लेना चाहता था। वह अपने इस नये मालिक प अविश्वास और संदेह कर रहा था।

"भाई, मेरे रोजगार का यह ढंग नहीं। मजदूरी पहले हा लग जाय तो अच्छा।"

शेलकश ने जाल फेंकना आरंभ कर दिया।

"बहस मत करो। ठहरो। चलो सराय में चलें।"

दोनों साथ-साथ सड़क पर चलने लगे। शेलकश मालिक की

न में था, मूँछें उमेठ रहा था। युवक अत्यंत विनीत भाव से ठ रहा था, मालिक के लिये रास्ता छोड़ देता। फिर भी शंकित र अन्यमनस्क था।

"अजी तुम्हारा नाम क्या है ?"—शेलकश ने पूछा।

"गैब्रिलो !"—युवक ने बतलाया।

दोनों उस गंदी और धुएँदार सराय में पहुँचे। शेलकश दूकानदार के पास गया और जाने-पहचाने गाहक की तरह बात करने गा। मानों वह वहाँ नित्य जाया करता हो। उसने एक बोतल राब, कुछ शाक-दाल, गोश्त और चाय लाने को कहा। आर्डर देकर उसने खानसामा को समझाया—"जल्दी हाजिर करो।" खानसामा ने चुपचाप सिर हिला दिया। सराय में शेलकश की ऐसी जमी हुई धाक और प्रतीति से गैब्रिलो के हृदय में अपने उठाईगीर मालिक के प्रति आदर का भाव जाग उठा।

"अच्छा हम लोग जलपान कर लें, यहीं बातचीत भी हो जायगी। तुम यहीं चुपचाप बैठो, मैं अभी आया।"

वह बाहर चला गया। गैब्रिलो ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। सराय एक तहखाने में थी। उसमें नमी और अँधेरा था। शराब की भभक और तमाखू के धुएँ, तारपीन की गमक और सड़ी हुई दुर्गंधि से कमरा भरा था। गैब्रिलो के सामने दूसरे टेबुल पर मल्लाह की पोशाक में एक शराबी बैठा था। दाढ़ी सुर्ख थी, देह कोयले की धूल और तारपीन से भरी थी। वह रह-रहकर गुनगुना उठता था। ऊष्म और कंठ्य वर्णों में रचा हुआ,

और वेमेल शब्दों का एक अनोखा गाना गा रहा था। निस्संदेह वह रूसी नहीं था।

उसके पीछे दो स्त्रियाँ फटे-पुराने वस्त्र पहने बैठी थीं। बाल काले-काले थे। सूर्य की तपन से चेहरा झुलस गया था। वे भी शराब की झोंक में कुछ गा रही थीं।

दूसरी ओर अनेक व्यक्ति अंधकार में से निकलते दिखाई पड़ रहे थे। उनके बाल बेढंगे और बिखरे हुए थे। वे नशे में चूर थे, शोर मचा रहे थे।

गैव्रिलो को अकेले बैठे रहना क्लेशकर प्रतीत होने लगा। वह मालिक के शीघ्र लौट आने के लिये उत्सुक हो उठा। सराय में कोलाहल बढ़ता ही जा रहा था, पल-पलपर कर्कश होता जाता था। शोर-गुल के मिलने से तुमुल-ध्वनि हो रही थी। वह किसी भीषण जंतु की दहाड़ के समान गूँज रही थी। मानों वह जंतु अपने सैकड़ों विविध कंठों से कुपित होकर उस अंधकूप से बाहर निकलने के लिये जोर-से गरज रहा हो, पर निकल न पाता हो।

गैव्रिलो को नशा-सा जान पड़ने लगा, मानों कोई चढ़ बैठा हो। सारा अंग सुन्न पड़ गया, माथा घूमने लगा। उन लोगों का कुतूहल देखते-देखते आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

शेलकश अंदर आया। दोनों खाने-पीने लगे। बातचीत भी आरंभ हुई। तीन गिलास शराब पीने के बाद गैव्रिलो छक उठा। शरीर में स्फूर्ति आ गई। उसे अपने मालिक से कुछ मजेदार बातें करने की इच्छा हुई। मालिक भी कैसा सज्जन था! कोई काम

घर ने पर भी कैसी आव-भगत कर रहा था ! गैब्रिलो के कंठ
के वेग के साथ जितने शब्द आते, वे न जाने क्यों जिह्वा से
निकलते ही न थे।

शेलकश ने उसे देखा, वह व्यंग्य के साथ मुसकुराता हुआ
बोला—"रह गए ! अरे थोरहे ! बस, पाँच ही गिलास ! तुम काम
क्या करोगे ?"

"प्यारे दोस्त !"—गैब्रिलो शराबियों की तरह मुसकुराने लगा।
रो मत ! हम तुम्हें मानते हैं। जरा इधर तो देखो ! मुझे पैर
छू लेने दो ! वाह !"

"आओ, आओ, एक घूँट और !"

गैब्रिलो ने और पी। अंत में उसकी ऐसी अवस्था हो गई कि
सामने की सभी चीजें लहर की तरह नीचे-ऊपर होने लगीं। उसे
रा होने लगा। चेहरे से लड़कों की सी चपचपाहट और विमू-
ता झलकने लगी। कुछ कहने का प्रयत्न करता तो भद्दे ढंग से
ठ चाटता रह जाता। शेलकश उसे ध्यान से निहार रहा था, अपनी
छें उमेठ रहा था, मानों किसी बात का स्मरण कर रहा हो। वह
न-ही-मन मुसकुरा रहा था। मुसकान रूखी थी, ईर्ष्यापूर्ण थी।

शराबियों के कोलाहल से सराय गूँज रही थी। लाल बालों-
ला मल्लाह मेज पर टेहुनी के सहारे सो रहा था।

"आओ, हम लोग चलें।"—शेलकश ने उठते हुए कहा।
गैब्रिलो ने उठने का प्रयत्न किया पर उठ न सका। वह सौगंध खा
र शराबियों का सा निरर्थक अट्टहास करने लगा।

"गहरी है !" कहकर शेलकश फिर उसके सामने बैठ गया।

गैव्रिलो खीसें निकाल रहा था, नये मालिक को उदास नेत्रं से घूर रहा था। शेलकश उसे ध्यान से, सावधानी से औ विचारपूर्वक निरख रहा था। उसके सामने ऐसा व्यक्ति था, जिसक जीवन उसके हिंसक पंजों में आ फँसा था। शेलकश विचार कर रहा था कि अब मैं इसका जो चाहूँ करूँ। वह उसके जीवन को ताश के पत्ते की तरह फाड़ भी सकता था और चौखटे में भली-भाँति जमा भी सकता था। वह यह जानकर नाच उठा कि मैं इस समय एक मनुष्य का स्वामी हूँ। वह सोचने लगा कि इस नवयुवक को भाग्य ने आज जितनी शराब पिलाई है, उतनी गहरी शराब जन्म भर में कभी न पी होगी।

अंत में शेलकश के मन की ये सब भावनाएँ एक में विलीन हो गईं। वह पिता की तरह गुरुता का अनुभव करने लगा। उसे लड़के के लिये खेद होने लगा। पर लड़का उसके बड़े काम का था। शेलकश ने अपनी बाँहों में गैव्रिलो को टाँग लिया। अपने घुटनों द्वारा उसे ठेलकर सराय से बाहर आया। उसे छज्जे की छाया में जमीन पर लिटा दिया और बगल में बैठकर सिगरेट पीने लगा। गैव्रिलो बड़बड़ाता हुआ इधर-से-उधर खिसका और गाढ़ी निद्रा में लीन हो गया।

(२)

"तैयार हो ?"—शेलकश ने धीमे स्वर में गैव्रिलो से पूछा। वह डाँड़ों के सुधारने में लगा था।

"क्षणभर ठहरो ! कुंडा ढीला पड़ गया है, इसे ठोक दूँ ?"

"न-न ! शोर न हो ! हाथ से दबा दो, वह बैठ जायगा।"

वे चुपचाप नाव खोल रहे थे। नाव टर्की के जहाजी बेड़े के पीछे बँधी थी।

रात अँधेरी थी। स्फुट मेघों के घने स्तर आकाश में चक्कर काट रहे थे। समुद्र शांत, नीला, तेल की भाँति गाढ़ा था। उससे नमक की गंध निकल रही थी। वह जहाजों और तटों को चूम रहा था। शेलकश की नाव डगमगा रही थी। उसके चारों ओर नावें-ही-नावें थीं। तट से दूर समुद्र में जहाजों की एक नीली पंक्ति जल के धरातल पर खड़ी दिखाई पड़ती थी। विविध वर्ण के प्रकाश से जगमगाते हुए मस्तूल अपनी नोक से आकाश के अंधकार को चीर रहे थे। समुद्र में प्रकाश प्रतिबिंबित हो रहा था। वह पीत ज्योतिराशि से चित्रित था। उसमें प्रकाश लहरा रहा था। नीले जल के कोमल और सुस्थिर मखमली वक्षस्थल पर वह बड़ा सुहावना लगता था। समुद्र लय के साथ गहरी साँस ले रहा था। वह घोर निद्रा में निमग्न था। दिनभर के थके माँदे स्वस्थ श्रमजीवी की भाँति सोया हुआ था।

"बाहर आ गए !"—गैब्रिला ने डाँडों को पानी में छोड़ते हुए कहा।

"हाँ !"—शेलकश ने तेजी से पतवार मोड़ा और दो जहाजों के बीच के संकीर्ण मार्ग से नाव को बाहर निकाल लिया। दोनों समतल जल पर सर्र से आगे बढ़े। जल के धरातल में

और आगे में सरसराती और ज्योति फूट पड़ती। नाव के पीछे उस ज्योति की एक चौड़ी और कंपित रेखा दिखाई पड़ रही थी।

"क्यों, तुम्हारे सिर-दर्द का क्या हाल है ?"—शेलकश ने मुसकुराते हुए पूछा।

"बहुत तेज ! बढ़ा जा रहा है। क्षणभर में इसे पानी में गार दूँगा।

"क्यों ? अच्छा हो, कलेजा तर करो, दर्द दूर हो जायगा। लो, अभी ले सकते हो।"—उसने गेमिलो की ओर बोतल बढ़ाई।

"वाह ! भगवान तुम्हारा भला करें !"

घूँटने की गट्-गट् मंद-ध्वनि सुनाई पड़ी।

"क्यों ? क्यों ? अच्छी है ? बस !"—शेलकश ने उसे रोक दिया।

नाव फिर सरसराती हुई चली। वह जहाजों के बीच निस्तब्ध चली जा रही थी। उसके मार्ग में जल पर एक क्षीण रेखा पड़ जाती। सहसा वे जहाजों के जगड्वाल से निकल कर मुड़े। अब सामने दूर तक प्रशस्त, अनंत, शांत, प्रदीप्त और उच्छ्वसित समुद्र-ही-समुद्र दिखाई पड़ रहा था। क्षितिज पर प्रलयंकर मेघों का दल जल से निकलता हुआ दृष्टि आ रहा था। कुछ नील कमल से पीत पुच्छ के, कुछ सागर से हरित और कुछ मटमैले थे। इनकी छाया भीषण और घनी
कर बुद्धि और हृदय अकुला जाते थे। वे एक के प

दूसरे में ... दूसरे को आच्छा।

मंदगति से चल रहे थे। इन मंथरगति निर्जीव जलदों के जुलूस में अभिचार का संकेत था। मानों उनका विराट् दल मंद गति से निरंतर मँडराता हुआ अकस-वश आकाश को विविध वर्णों के नक्षत्ररूपी नेत्रों से सुषुप्त सागर में झाँकने से रोक रहा । तारे मानों स्वप्न में श्वास ले रहे हों। उनकी शुद्ध और पवित्र ज्योति को सानुराग निरखने से हृदय में आशा का संचार होता था।

"समुद्र कैसा रमणीक लगता है, क्यों ?"—शेलकश ने पूछा।

"हाँ, सुहावना है। पर मुझे भय लग रहा है।"—गैब्रिलो ने डाँडों को जोर से चलाते हुए उत्तर दिया। जल में मंद-मंद हर-शब्द हो उठा। वह लंबे-लंबे डाँडों के आघात से चमक । नीली उज्ज्वल ज्योति झलकने लगी।

"भय लगता है! मूर्ख कहीं का!"—शेलकश असंतोष से बड़बड़ाया। वह डाकू था, कुटिल था, समुद्र को प्यार करता था। उसकी क्षुब्ध और अधीर प्रकृति संस्कार से अभ्यस्त हो गई थी। वह नीले, विस्तीर्ण, अनंत, स्वच्छंद, और विराट् समुद्र को निहारने में कभी थकता न था। उसे इस सूखे उत्तर से चोट लगी, क्योंकि वह मनोमुग्धकारी समुद्र की रमणीयता के संबंध में प्रश्न कर रहा था। वह नाव में पीछे बैठा था, पतवार से पानी को चीर रहा था और शांति से अनंत की ओर निहार रहा था। सागर के इस मखमली धरातल पर वह निरंतर बढ़ते रहने का अभिलाषी था।

समुद्र पर उसके हृदय में उदार एवं उच्च भावनाओं का उदय हो जाता, उसके नैतिक जीवन की जघन्यता शुद्ध हो जाती। वह इसे मूल्यवान मानता था। उन्मुक्त वायु और जल में उसका हृदय उल्लसित हो उठता था, इसीसे वह इसे प्यार करता था। यहाँ जीवन की चिंताएँ अपनी तीव्रता और स्वयं जीवन अपना ममत्व खो बैठता था।

"अजी, लहासी कहाँ है ?"—गैव्रिलो ने नाव पर दृष्टि डालते हुए सशंक होकर पूछा।

शेलकश चौंक उठा।

"लहासी ? यहाँ, पीछे रखी है।"

"क्यों, कैसी लहासी है जो ?"—"गैव्रिलो ने आश्चर्य और संदेह से फिर पूछा।

"कैसी ? मछली मारनेवाली।"-पर शेलकश युवक से असत्य बोलने में लज्जित होने लगा। उसे वास्तविक उद्देश्य छिपाना ठीक न जँचा। पर किसान युवक के प्रश्न से हृदय की जो वस्तु खो गई थी, उसके लिये उसे आंतरिक खेद हुआ। वह कुपित हो उठा। उसका हृदय और कंठ जलने लगा। वह निर्दयता और उद्दंडता के साथ किटकिटाता हुआ गैव्रिलो से बोला—"तुम जहाँ बैठे हो, अपनी भलाई चाहते हो तो चुपचाप वहीं बैठे रहो। जो तुम्हारा काम नहीं, उसमें टाँग मत अड़ाओ। नाव खेने के लिये रखे गए हो, बस खेते रहो। जबान हिलाई तो तुम्हारे हक में बुरा होगा। समझे ?"

क्षणभर के लिये नाव काँप उठी, खड़ी हो गई। डाँड़ स्थिर
गए, जल में फेन उठने लगा।

"सेश्रो !"

वायु में स्वर की तीव्र ध्वनि गूँज उठी। गैब्रिलो डाँड़ चलाने
ा। नाव तेज़ी से, डगमगाती हुई, चलने लगी। पानी दूर-
ाने लगा।

"सँभाल के !"

शेलकश उठा। पतवार उसके हाथ में था। वह तीव्र दृष्टि से
ब्रिलो का विवर्ण मुख-मंडल निहारने लगा। पैर आगे बढ़ाए हुए
लकश ऐसा जान पड़ता था मानों चीता शिकार पर उछलने ही
ला हो। क्रोध से दाँतों के पीसने का शब्द सुनाई पड़ा।

"कौन पुकारता है ?"—समुद्र में कर्कश ध्वनि गूँज उठी।

"अरे शैतान, खे ! धीरे से डाँड़ चला ! कुत्ते, मार डालूँगा,
ल, खे ! एक, दो, तीन ! तू खाली छपछप ही कर रहा है ! गला
प दूँगा।"—शेलकश ने फुसफुसाते हुए कहा।

"जगदंबे ! मैया !"—गैब्रिलो भय और श्रम से सुन्न होकर
ाँपते हुए प्रार्थना करने लगा।

नाव धीरे से मुड़ी और बंदर की ओर चलने लगी। बंदर
विविध वर्णों की ज्योति का घनीभूत पुंज जान पड़ता था। मस्तूलों
के सीधे शिखर दिखाई दे रहे थे।

"ए-ए-ए ! कौन चिल्लाता है ?"—फिर ध्वनि गूँज उठी। इस
ार आवाज दूर से आई थी। शेलकश फिर शांत हो गया

समुद्र पर उसके हृदय में उदार एवं उच्च भावनाओं का उदय हो जाता, उसके नैतियक जीवन की जघन्यता शुद्ध हो जाती। वह इसे मूल्यवान मानता था। उन्मुक्त वायु और जल में उसका हृदय उल्लसित हो उठता था, इसीसे वह इसे प्यार करता था। यहाँ जीवन की चिंताएँ अपनी तीव्रता और स्वयं जीवन अपना ममत्व खो बैठता था।

"अजी, लहासी कहाँ है?"—गैव्रिलो ने नाव पर दृष्टि डालते हुए सशंक होकर पूछा।

शेलकश चौंक उठा।

"लहासी? यहाँ, पीछे रखी है।"

"क्यों, कैसी लहासी है जी?"—"गैव्रिलो ने आश्चर्य और संदेह से फिर पूछा।

"कैसी? मछली मारनेवाली।"-पर शेलकश युवक से असत्य बोलने में लज्जित होने लगा। उसे वास्तविक उद्देश्य छिपाना ठीक न जँचा। पर किसान युवक के प्रश्न से हृदय की जो वस्तु खो गई थी, उसके लिये उसे आंतरिक खेद हुआ। वह कुपित हो उठा। उसका हृदय और कंठ जलने लगा। वह निर्दयता और उद्दंडता के साथ किटकिटाता हुआ गैव्रिलो से बोला—"तुम जहाँ बैठे हो, अपनी भलाई चाहते हो तो चुपचाप वहीं बैठे रहो। जो तुम्हारा काम नहीं, उसमें टाँग मत अड़ाओ। नाव खेने के लिये रखे गए हो, वस खेते रहो। जवान हिलाई तो तुम्हारे हक में बुरा होगा। समझे?"

क्षणभर के लिये नाव काँप उठी, खड़ी हो गई। डाँड़ स्थिर हो गए, जल में फेन उठने लगा।

"खेओ !"

वायु में स्वर की तीव्र ध्वनि गूँज उठी। गैब्रिलो डाँड़ चलाने लगा। नाव तेजी से, डगमगाती हुई, चलने लगी। पानी हरहराने लगा।

"सँभाल के !"

शेलकश उठा। पतवार उसके हाथ में था। वह तीव्र दृष्टि से गैब्रिलो का विवर्ण मुख-मंडल निहारने लगा। पैर आगे बढ़ाए हुए शेलकश ऐसा जान पड़ता था मानों चीता शिकार पर उछलने हो वाला हो। क्रोध से दाँतों के पीसने का शब्द सुनाई पड़ा।

"कौन पुकारता है ?"—समुद्र में कर्कश ध्वनि गूँज उठी।

"अरे शैतान, खे ! धीरे से डाँड़ चला ! कुत्ते, मार डालूँगा, चल, खे ! एक, दो, तीन ! तू खाली छपछप ही कर रहा है ! गला टीप दूँगा !"—शेलकश ने फुसफुसाते हुए कहा।

"जगदंबे ! मैया !"—गैब्रिलो भय और श्रम से क्षुब्ध होकर काँपते हुए प्रार्थना करने लगा।

नाव धीरे से मुड़ी और बंदर की ओर चलने लगी। बंदर विविध वर्णों की ज्योति का घनीभूत पुंज जान पड़ता था। मस्तूलों के सीधे शिखर दिखाई दे रहे थे।

"ए-ए-ए ! कौन चिल्लाता है ?"—फिर ध्वनि गूँज उठी। —पर आवाज दूर से आई थी। शेलकश फिर शांत हो गया।

"दोस्त! तुम्हीं तो चिल्ला रहे हो!"—जिस ओर से आवाज आई थी, उस ओर मुँह करके उसने कहा। फिर गैत्रिलो की ओर मुड़ा। वह अब तक प्रार्थना कर रहा था।

"अरे, भाई, कुशल समझो! यदि उन दुष्टों ने पकड़ लिया होता तो तुम्हारे ही सिर घहराता। समझे? तुम्हें रस्से में कसकर फेंक देता—मछलियाँ नोच खातीं।"

शेलकश शांति से विनोदपूर्ण स्वर में बोल रहा था। गैत्रिलो अब तक भय से काँप रहा था। वह हाथ जोड़ने लगा—"सुनो, क्षमा करो, ईश्वर के नाम पर! पैर पकड़ता हूँ, मुझे छोड़ दो, कहीं किनारे उतार दो। ऊँ-ऊँ-ऊँ! मेरा नाश हो जायगा। ईश्वर से डरो, मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हारे किस काम का? मुझसे यह काम न होगा। मैंने आज तक यह काम नहीं किया। पहली ही बार ऐसा मौका पड़ा है। हे भगवन्, क्यों प्राण ले रहे हो! तुमने मुझे कहाँ फँसा दिया? क्यों जी, तुम्हें शर्म आनी चाहिए! क्या तुम किसीकी जान लोगे? ऐसे कर्म!"

"कैसे कर्म?"—शेलकश ने कड़ककर पूछा—"क्यों रे? बोल, कैसे कर्म?"

युवक को भयभीत देखकर वह प्रसन्न हो रहा था। उसे विचार में आनंद मिलने लगा कि मैं एक भयंकर जीव हूँ।

"कलुषित कर्म, भाई! ईश्वर के लिये मुझे छोड़ तुम्हारे किस काम का? समझे? भैया, बाबू!"

"अपनी जबान सँभाल। तेरी जरूरत न होती तो तु

ही क्यों ! समझा ? अच्छा मुँह बंद कर।"

"हाय भगवान् !"—गैब्रिलो ने सिसकते हुए गहरी साँस ली।

"आओ, काम देखो।"—शेलकश ने बीच ही में कहा। पर गैब्रिलो अपने को सँभाल न सका। वह शांत भाव से सिसकने और रोने लगा। उसे छींक आने लगी, वह छटपटाने लगा। फिर भी वह जी तोड़कर खे रहा था। नाव तीर की तरह सरसराती चली जा रही थी। जहाजों का काला आकार फिर दिखाई देने लगा। नाव उन्हींके बीच लुप्त हो गई। उनके बीच से होकर नाव भेड़िये की तरह चक्कर काटने लगी।

"सुनो! यहाँ तुमसे कोई कुछ पूछे तो जबान बंद रखना, नहीं तो जान से हाथ धोओगे। समझे ?"

"हाय रे! हाय!"—गैब्रिलो ने उस आदेश के उत्तर में निराशा से साँस खींची और भर्राई हुई आवाज में कहा—"मर गया!"

"भूँको मत!"—शेलकश ने डपटकर धीरे से कहा।

इस डपट से गैब्रिलो का होश-हवास गुम हो गया। वह मशीन की तरह निर्जीव बन गया। आपत्ति की हिमराशि में लीन हो गया। यंत्र की तरह डाँड़ उठाता, पीछे जाता और उन्हें निकालकर भीतर रखता। वह जूतों को बराबर शून्य भाव से देख रहा था। लहरें भीषणता के साथ जलयानों से टकरा रही थीं। उनकी इस निद्रालस ध्वनि में अवधानता का संकेत था। गैब्रिलो सिहर उठा। नाव हक के पास पहुँची। पत्थर की दीवालों पर से मनुष्यों

"दोस्त! तुम्हीं तो चिल्ला रहे हो!"—जिस ओर से आवाज आई थी, उस ओर मुँह करके उसने कहा। फिर गैव्रिलो की ओर मुड़ा। वह अब तक प्रार्थना कर रहा था।

"अरे, भाई, कुशल समझो! यदि उन दुष्टों ने पकड़ लिए होता तो तुम्हारे ही सिर वहराता। समझे? तुम्हें रस्से में कसकर फेंक देता—मछलियाँ नोच खातीं।"

शेलकश शांति से विनोदपूर्ण स्वर में बोल रहा था। गैव्रिलो अब तक भय से काँप रहा था। वह हाथ जोड़ने लगा—"सुनो, क्षमा करो, ईश्वर के नाम पर! पैर पकड़ता हूँ, मुझे छोड़ दो, कहीं किनारे उतार दो। ऊँ-ऊँ-ऊँ! मेरा नाश हो जायगा। ईश्वर से डरो, मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हारे किस काम का? मुझसे यह काम न होगा। मैंने आज तक यह काम नहीं किया। पहली ही वार ऐसा मौका पड़ा है। हे भगवन्, क्यों प्राण ले रहे हो! तुमने मुझे कहाँ फँसा दिया? क्यों जी, तुम्हें शर्म आनी चाहिए! क्या तुम किसीकी जान लोगे? ऐसे कर्म!"

"कैसे कर्म?"—शेलकश ने कड़ककर पूछा—"क्यों रे? बोल, कैसे कर्म?"

युवक को भयभीत देखकर वह प्रसन्न हो रहा था। उसे इस विचार में आनंद मिलने लगा कि मैं एक भयंकर जीव हूँ।

"कलुषित कर्म, भाई! ईश्वर के लिये मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हारे किस काम का? समझे? भैया, वावू!"

"अपनी जवान सँभाळ। तेरी जरूरत न होती तो तुझे लाता

है क्यों ! समझा ? अच्छा मुँह बंद कर।"

"हाय भगवान् !"—गैब्रिलो ने सिसकते हुए गहरी साँस ली।

"आओ, काम देखो।"—शेलकश ने बीच ही में कहा। पर गैब्रिलो अपने को सँभाल न सका। वह शांत भाव से सिसकने और रोने लगा। उसे छींक आने लगी, वह छटपटाने लगा। फिर भी वह जी तोड़कर खे रहा था। नाव तीर की तरह सरसराती चली जा रही थी। जहाजों का काला आकार फिर दिखाई देने लगा। नाव उन्हींके बीच लुप्त हो गई। उनके बीच से होकर नाव भेड़िये की तरह चक्कर काटने लगी।

"सुनो ! यहाँ तुमसे कोई कुछ पूछे तो जबान बंद रखना, नहीं तो जान से हाथ धोओगे। समझे ?"

"हाय रे ! हाय !"—गैब्रिलो ने उस आदेश के उत्तर में निराशा से साँस खींची और भर्राई हुई आवाज में कहा—"मर गया !"

"भूँको मत !"—शेलकश ने डपटकर धीरे से कहा।

इस डपट से गैब्रिलो का होश-हवास गुम हो गया। वह मशीन की तरह निर्जीव बन गया। आपत्ति की हिमराशि में लीन हो गया। यंत्र की तरह डाँड़ उठाता, पीछे जाता और उन्हें निकाल-कर भीतर रखता। वह जूतों को बराबर शून्य भाव से देख रहा था। लहरें भीषणता के साथ जलयानों में टकरा रही थीं। उनकी इस निद्रालस ध्वनि में अवधानता का संकेत था। गैब्रिलो सिहर उठा। नाव डक के पास पहुँची। पत्थर की दीवालों

का शब्द, पानी की हरहराहट, गाना और सीटियों की कर्कश ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

"ठहर!"—शेलकश ने कहा।—"खेना बंद कर! दीवाल के सहारे चल। धीरे से। शैतान!"

गैव्रिला ने काई लगे हुए चिकने पत्थरों के सहारे नाव को आगे बढ़ाया। नाव निःस्वन, हरे-हरे, चमकते हुए पत्थरों से सटकर आगे बढ़ी।

"ठहर! डाँड़ मुझे दे! यहाँ ला। तेरा पासपोर्ट कहाँ है? बेग में? बेग मुझे दे! ला, जल्दी ला। ऐसा! जिसमें तू चंपत न हो जाय। अब तू भाग नहीं सकता। बिना डाँड़ों के तू किसी तरह निकल भागता, पर बिना पासपोर्ट के तेरी हिम्मत नहीं पड़ेगी। यहीं ठहर। पर देखो—अगर चिल्लाए तो सीधे समुद्र की तह में पहुँचे।"

सहसा हाथों से किसी चीज़ के सहारे वह हवा में उठा और दीवाल के ऊपर पहुँचकर गायब हो गया।

गैव्रिला काँप उठा। यह सब बड़ी फुर्ती से घटित हुआ। उसे जान पड़ा मानों जो भार और त्रास उस दुबले-पतले डाकू के सामने उसे दबाए हुए था, उससे वह उन्मुक्त हो गया। अच्छा, तो अब भागें! उसने खुलकर साँस ली और चारों ओर दृष्टि डाली। बाँईं ओर मस्तूलहीन एक तमावृत जहाज खड़ा था—निर्जीव, असहाय और अनाथ! तलपट में पानी के टकराने से, उसके भीतर प्रतिध्वनि हो उठती, मानों वह गहरी साँस ले रहा हो।

रहा था। वह अपने मालिक के लिये उत्कंठित हो उठा, उसे इतनी देर क्यों लगी? समय की गति मंद थी—आकाशचारं मेघों से भी मंद। निस्तब्धता क्षण-क्षण भीषण होती जाती थी दीवाल से खड़खड़ और झनझन तथा कुछ फुस्स-फुस्स ध्वनि हो रही थी। गैब्रिलो को जान पड़ा कि प्राणांत हो जायगा।

"क्यों रे! सोता है? पकड़! सँभाल के!"—शेलकश का स्वर सुन पड़ा।

दीवाल से कोई भारी ठोस चीज नीचे आई। गैब्रिलो ने उसे नाव में रखा। फिर उसी तरह की दूसरी चीज उतारी गई। पीछे से शेलकश की विशाल मूर्ति दीवाल फाँदती हुई दीखाई दी। कहीं से डाँड़ फिर आ लगे। गैब्रिलो का थैला उसके पैरों पर आ गिरा। शेलकश हाँफता हुआ नाव में पीछे जा बैठा।

गैब्रिलो प्रसन्नता और कातरता के साथ मुसकुराता हुआ उसे निरखने लगा।

"थक गए?"—उसने पूछा।

"बच्चू, थकने को विवश था। चल, भरसक तेजी से खे। अब दुख काट बहा! शिकार मजे का मिला। आधा काम हो गया है। अब शैतानों की आँख बचाकर निकल जाने की देर है। फिर रुपया ले और बीबी के पास जा। तेरे बीबी है न! क्यों बच्चू?"

"न-न"—गैब्रिलो ने किसी प्रकार जबान खोली। उसकी छाती धौंकनी की तरह और भुजाएँ लोहे की कमानी-सी चल

रही थीं। नाव के नीचे पानी हरहरा रहा था। इस ज्योति पहले से अधिक चौड़ी थी। गैब्रिलो थोड़ी ही देर में तर हो गया, फिर भी वह भरपूर ताकत से खे रहा था। वह दो बार भीपणता का सामना कर चुका था। अब बार सचमुच प्राणों पर आ पड़ी थी। वह यही मना रहा कैसे तट पर पहुँचूँ और निकल भागूँ! कहीं यह मुझे डाले या जेल में न ठूँस दिया जाऊँ! उसने निश्चय कर न तो इससे बोलूँगा और न कोई बात करूँगा। यह जो कहे वही करूँगा, इसका विरोध न करूँगा। यदि इससे छुटकारा मिला तो कल ही देवी को बलि चढ़ाऊँगा। उसके हृदय से प्रार्थना का स्रोत फूट पड़ना चाहता था, पर उसने अपने को सँभाला, और बैठा-बैठा चुपचाप कनखी से शेलकश को देखता रहा।

दुबला और लंबा शेलकश इस तरह आगे को झुका था, मानों कोई पक्षी उड़ने के लिये बैठा हो। नाव की सीध में वह अपनी गृद्ध-दृष्टि से अँधेरे में कुछ देख रहा था। नुकीली और हिंसक नासिका को इधर-उधर घुमा रहा था। एक हाथ से पतवार का डाँड़ा पकड़कर दूसरे से मूँछें उमेठ रहा था। मुसकान से मूँछें बराबर हिल रही थीं। वह अपने आप पर और अपनी सफलता पर प्रसन्न था और साथ ही उस युवक पर भी मुग्ध हो रहा था, जो भयभीत होकर उसका गुलाम बना हुआ था। वह कल के लिये उच्छृंखलता का स्वप्न देख रहा था और अपनी उस शक्ति पर मुग्ध हो रहा था, जिसने नवयुवक को उसका दास बना दिया

आघात हुआ, मानों कोड़े पड़ रहे हों। आँखें बंद करके वह आगे खिसक गया।

नौका के सामने सुदूर क्षितिज में नीरधि के श्यामल जल से एक विशाल ज्वलंत करवाल निकलती जान पड़ी। अंधकार को चीरकर उसकी धारा धाराधरों के बीच लपलपा रही थी। वारिधि के वक्ष पर विशालकाय नील-ज्योति छिटकी हुई थी। इसीसे अदृश्य स्थिर श्याम पोत ध्वांत के गर्भ से निकले चले आ रहे थे। ये कुहरे की चादर ओढ़े हुए थे। ये पारावार के तल में न जाने कितने दिनों से पड़े थे, झंझा ने इन्हें अपने प्रबल करों से डूबो दिया था। अब वही करवाल मानों इन्हें ऊपर कर रही है। उसीके संकेत पर ये आकाश को निहार रहे हैं। मस्तूलों में लिपटे हुए उपकरण मानों पोतों के जाल में फँसकर तल से निकले हुए जल-वेतस हों। वह विलक्षण नीली करवाल फिर ऊपर उठी और ध्वांत-पटल को फाड़ती हुई दूसरी दिशा में गिर पड़ी। उसकी लपलपाहट में अदृश्य पोतों के आकार फिर अंधकार से निकलने लगे।

शेलकश की नाव रुक गई, खड़ी हो गई। गैव्रिलो ने हाथों से मुँह ढक लिया। शेलकश ने डाँड़ से उसे कोंचा, और रोष से पर धीमे स्वर में बोला—"मूर्ख, यह चुंगीवालों का जहाज है। यह रोशनी बिजली की है। उठ, बुद्धू! अगर रोशनी इधर हुई तो तेरा और मेरा दोनों का सत्यानाश हो जायगा। चल!"

अंत में जब गैव्रिलो के सिर में डाँड़ का सिरा जोर से लगा,

सो वह उठ बैठा। वह अब भी आँखें खोलने में भय
उसने अपनी जगह पर बैठकर डाँड़ हाथ में लिए, और

"धीरे से! प्राण ले लूँगा! कह दिया, धीरे में.
डरता क्यों है रे! घोड़मुहे! लालटेन की रोशनी थी,
नहीं। डाँड़ आहिस्ते से। शैतान कहीं का! वे रोशनी
समुद्र में हमारे ऐसे लोगों को देख रहे हैं। चोरी से माल ले
वालों को पकड़ लेते हैं। पर अब हमें नहीं पा सकते, बहुत
निकल आए। अबे, डर मत, अब वे कुछ नहीं कर सकते। अब
हम"—शेलकश ने मस्ती से चारों ओर देखा।—"बस, अब नहीं
पा सकते। मूर्ख, आ तेरी किस्मत अच्छी है!"

गैब्रिलो चुपचाप बैठा खे रहा था और जोर से साँस लेता
जाता था। जिधर वह ज्वलंत करवाल निकलती और लुप्त हो रही
थी उस ओर वह ताक भी लेता था। उसे शेलकश की बात का
विश्वास नहीं हुआ। अंधकार को चीरकर जो नीली ज्योति छिट-
कती और वारिधि को रजत की भाँति प्रदीप्त करती, वह अवर्ण-
नीय थी, रहस्यमय थी। गैब्रिलो भय से अचेत था। अज्ञात
भार से वक्ष में वेदना होने लगी। वह यंत्र की भाँति खे रहा था,
चेहरा पीला पड़ गया था, सिर पर मानों वज्रपात होने जा रहा
हो। अब उसमें न तो कोई चेतना ही शेष थी, न अभिलाषा।
वह शून्य हो गया था, आत्मा उड़-सी गई थी। रात्रि की प्रगति ने
उसकी सारी मानवता ही हड़प ली थी।

पर शेलकश आह्लादित था। उसे पूर्ण सफलता मिली थी,

"एक हजार !"—गैव्रिलो ने अविश्वास से कहा। पर तुरत ही त्रस्त हो गया। उसने गट्ठरों को पैर से टटोला और पूछा—"क्यों इसमें है क्या ?"

"इसमें रेशम है। बहुमूल्य रेशम ! असल में दो हजार का माल है, पर मैं सस्ते में बेचूँगा। है न अच्छा व्यवसाय ?"

"हाय !"—गैव्रिलो ने सशंक होकर कहा—"यदि यह सब मुझे मिल जाता !" उसने उसास ली। उसे अपने गाँव की छोटी-सी जमीन, दरिद्रता, अपनी माता तथा संबंधियों की याद आ गई। इन्हींके लिये काम की खोज में उसे निकलना पड़ा था, रात में ऐसी आपत्तियाँ सहनी पड़ी थीं। हृदय में स्मृतियों की बाढ़ आ गई। अपने गाँव, वहाँ की नदी, वन्य-प्रदेश और पहाड़ों का चित्र आँखों के समक्ष आ गया। स्मृतियों से वह आनंदित हो उठा, खिल उठा।—"आह ! बड़ा आनंद आवेगा !"—उसने दुःख से उसास ली।

"सचमुच ! तुम रेल से घर जाना, कुमारियाँ तुम्हें घर बैठे प्यार करेंगी। क्यों ? जिसे इच्छा हो, ब्याह लेना। एक मकान बनवा लेना। न, शायद, इतने रुपयों में मकान न बने ?"

"हाँ, इतने में नहीं बन सकता। वहाँ लकड़ी मँहगी है।"

"अजी, कोई चिंता नहीं। पुराने की मरम्मत करा लेना। रही सवारी ! क्या तुम्हारे पास घोड़ा है ?"

"घोड़ा ? हाँ, है। एक पुराना अड़ियल टट्टू !"

"अच्छा, तो एक घोड़ा ले लेना—बढ़िया घोड़ा ! गाय, भेंड़ आदि-आदि, क्यों ?"

"इनकी चर्चा मत करो! ऐसा ही होता तो क्या यह जिंदगी कटती!"

"अरे, दोस्त, तुम्हारी जिंदगी मजे में कटेगी। ऐसी बातों का मुझे भी कुछ ज्ञान है। कभी मेरे भी मकान था। मेरे पिता गाँव के एक बड़े धनी व्यक्ति थे।"

शेलकश धीरे-धीरे खे रहा था। लहरें खेलती हुई नाव के किनारों पर आ लगती थीं! नाव उनपर नाच उठती, अंधकार में कठिनता से बढ़ पाती। सागर फेनिल और तरंगित था। वे दोनों मूर्तिमान होकर स्वप्न-सा देख रहे थे। शेलकश ने गैव्रिलो को उत्साहित और शांत करने के विचार से घर की चर्चा छेड़ दी थी, जिससे उसके ध्यान से ये बातें उतर जायँ। पहले तो वह मन ही में कुछ गुनगुनाता रहा, पर पीछे जब वह अपने साथी को ग्राम्य जीवन के आनंद की सुध दिलाने लगा तो उसे भी वह जीवन स्मरण हो आया। वह उससे थक चुका था, उसे भूल चुका था। पर अब किसान युवक से प्रश्न करने के बदले वह स्वयं ही उसका वर्णन करने लगा।

"भाई, कृषक-जीवन में सबसे बड़ी बात है स्वाधीनता! तुम स्वयं अपने स्वामी हो। अपना घर है; चाहे दो कौड़ी का ही हो, पर है तो अपना! अपनी जमीन है; चाहे वह हाथ ही भर की हो, पर है तो अपनी! पशु-पक्षी, पेड़-पल्लव सब अपने। किसान अपनी भूमि का राजा है। फिर काम भी तो समय से होता है। सबेरे उठना, काम करना। वसंत में एक प्रकार का, गर्मी में दूसरे

अतीत के विषमय जीवन को मधुपय बना देती है। मनुष्य अपनी भूलों में ही उलझ जाता है, अतीत को प्यार करने लगता है, भविष्य से निराश हो जाता है।

शेलकश के हृदय में भाव का एक वेग आ गया। वह घर की स्मृति में विमुग्ध था। माता के मधुर वचन और पिता का गंभीर घोष कर्ण-कुहरों में गूँज उठा। कितनी ही विस्मृत ध्वनियाँ सुन पड़ीं। हिमाच्छादित भू की, जुते हुए खेत की, हरित शस्य का दुकूल धारण किए वसुंधरा की अनेक सुगंधें नासिका में भर गईं। वह अब अपने को पददलित और दयनीय अवस्था में देखता—निर्जन और परित्यक्त। जो जीवन उसकी नस-नस में रुधिर का संचार कर रहा था, उसीसे वह नोंचकर फेंक दिया गया था।

"अरे! हम लोग किधर जा रहे हैं?"—गैब्रिलो ने यकायक पूछा।

शेलकश चौंककर शिकारी चिड़िया की भाँति चारों ओर देखने लगा।

"आह, नाव पर शैतान सवार है! कोई चिंता नहीं। जरा तेजी से खे। हम लोग अभी पहुँचे।"

"क्या आप स्वप्न देख रहे थे?"—गैब्रिलो ने मुसकुराते हुए पूछा।

शेलकश ने उसे ध्यान से देखा। युवक अब पूर्णतया स्वस्थ हो गया था—शांत, प्रसन्न और आनंदित जान पड़ता था। वह नवयस् था, उसका सारा जीवन संमुख पड़ा था पर उसे इसका

...था, यही बुरा था। संभवतः उसे पृथ्वी सँभाल रखे। ...लकश के मस्तिष्क में ये ही विचार चक्कर काट रहे थे। वह ...ली हो गया और उदास होकर गैब्रिलो से बोला—"मैं तो थक ...या! नाव भी रुक-रुककर चल रही है।"

"रुकती तो है, पर अब हम पकड़े तो नहीं जा सकते!"—...ब्रिलो ने गट्ठर को लात से ठेला।

"न, निश्चिंत रहो। मैं जाते ही बेच दूँगा और रुपये ले आऊँगा। बस!"

"एक हजार?"

"इससे एक कौड़ी कम नहीं।"

"अच्छी रकम है! अगर मुझ दीन के पास इतना होता! ...ह! जिंदगी मजे में कट जाती।"

"गाँव में?"

"हाँ! क्यों, वहीं तो रहना है—"

गैब्रिलो काल्पनिक स्वप्न में मग्न था। शेलकश की छाती फटी जा रही थी। उसकी मूँछें झुक गई थीं, लहरों के छींटों से दाहिना भाग भींग गया था, आँखें धँस गई थीं, उनकी चमक निकल गई थी। वह खिन्न था, उसकी दशा दयनीय थी। मानों शिकारी चिड़िया विषाद-ग्रस्त होकर बैठी हो। उसकी गंदी और सिकुड़ी हुई कमीज यही बता रही थी।

"मैं भी थक गया! चूर हो गया!"

"अभी पहुँच जाते हैं, वह देखो!"

किसी प्रकार की आशंका स्पष्ट झलक रही थी।

"अजी, उन्होंने तुम्हें कितना दिया ?"—अंत में, उसने शेलकश को बात करते न देखकर पूछा।

"देखो !"—शेलकश ने कोई चीज जेब से निकालकर गैव्रिलो को दिखाई। गैव्रिलो ने सतरंगे नोट देखे। आँखों के सामने सभी वस्तुएँ इंद्रधनुष के रंग में रँगी हुई चक्कर काटने लगीं।

"अजी,मैं समझता था कि तुम डींग हाँक रहे हो। कितना है ?"

"दस सौ अस्सी ! करारी रकम है !"

"अवश्य !"—गैव्रिलो ने कहा। वह लोलुप नेत्रों से उन नोटों को देख रहा था। शेलकश ने उन्हें फिर जेब में रख लिया।

"अजी, मैंने इतने रुपये कभी नहीं देखे ! तोड़े का तोड़ा है !" —वह दुःख से आह भरने लगा।

"चलो, मजे में ढालें !"—शेलकश ने उल्लास से कहा।—"खूब माल है ! डरो मत, मैं तुम्हारा हिस्सा दूँगा। अस्सी रुपये दूँगा। क्यों ? खुश हो न ? चाहो तो अभी गिना लो।"

"अगर आपका कोई हर्ज न हो। मैं नहीं कैसे करूँ !"

गैव्रिलो संदेह से काँप रहा था। कोई तीव्र भावना उसका हृदय विदीर्ण किए दे रही थी।

"हा-हा-हा ! क्यों रे, शैतान के पुतले ! 'मैं नहीं कैसे करूँ !' ले, अभी ले। इतने रुपये रखकर क्या करूँ [illegible] बोझ तो कुछ हलक[illegible]

शेलक[illegible] [illegible] नोट। [illegible]

पेढ़ाए। उसने डाँड़ छोड़कर अपने हाथ से उन्हें थाम लिया। उन्हें छाती के पास रख लिया और लोलुपता से आँखें मिचकाने लगा। उसने ज़ोर से साँस खींची, मानों उसने कोई गर्म चीज पी ली हो। शेलकश उसे व्यंग्यपूर्ण मुसकान से निहार रहा था। गैव्रिलो ने फिर डाँड़ उठाए, और आकुलता से खेने लगा। डाँड़ तेजी से चल रहे थे। आँखें नीचे झुकी थीं, मानों वह किसीसे भय खा रहा हो! उसके कंधे और कान फटे जा रहे थे।

"तू लोलुप हो गया, यह बुरा है! आखिर किसान ही तो!"—शेलकश ने विनोद से कहा।

"पर देखो, धन से क्या-क्या बातें हो जाती हैं!"—गैव्रिलो ने कहा। वह सहसा उत्तेजित होकर लड़खड़ाती जबान से जल्दी-जल्दी बोल रहा था। मानों विचारों का पीछा कर रहा हो और मुँह से निकलनेवाले शब्दों को पकड़ लेना चाहता हो। वह निर्धन और धन-संपन्न ग्रामीण जीवन का चित्र खींचने लगा।—"संमान, स्वाधीनता, सुख!"

शेलकश उसकी बात ध्यान से सुन रहा था। उसके चेहरे में गंभीरता थी और नेत्रों में काल्पनिक विचारों की छाया। कभी-कभी वह संतोषपूर्ण मुसकान से मुसकुरा देता।

"लो, पहुँच गए।"—अंत में, बीच ही में उसकी बात काट-कर शेलकश बोल उठा। एक लहर आई, उसने बड़ी सफाई से नाव को लेकर तट पर रख दिया।

"आओ, भाई, पार हुए! नाव और ऊपर खींच लेनी चाहिए।

कहीं वह न जाय ! वे लोग आकर ले जायँगे ! अच्छा, नमस्कार ! यहाँ से शहर चार कोस है । तुम कहाँ जाओगे ? फिर लौटोगे, क्यों ?'

शेलकश का चेहरा विनोदपूर्ण मुसकान से लाल हो रहा था । मानों उसने कोई मजेदार और गैव्रिलो को चकित करनेवाली बात सोची हो । वह जेब में हाथ डालकर नोटों को फड़फड़ाने लगा ।

"न—मैं—नहीं लौटूँगा । मैं—"—गैव्रिलो ने उसास ली, उसकी तो घिग्घी बँध गई । हृदय के भीतर अभिलाषाओं, शब्दों और भावनाओं की आँधी आ गई । आग-सी लग गई !

शेलकश चकपकाकर उसे देखने लगा ।

"क्या बात है जी ?"—उसने पूछा ।

"क्यों ?"—गैव्रिलो का चेहरा दमका, फिर स्याह पड़ गया । वह लड़खड़ाने लगा । मानों शेलकश पर टूट पड़ने के लिये लाला-यित हो अथवा किसी असह्य वेदना से विवश हो गया हो ।

शेलकश युवक की बौखलाहट से व्यग्र हो गया । न जाने आगे क्या हो !

गैव्रिलो अजीब ढंग से हँसने लगा, मानों सिसक रहा हो । उसका सिर झुका था, शेलकश उसके चेहरे का भाव नहीं लख सकता था । उसके कान भी मलिन थे, पहले लाल हुए और फिर पीले ।

"अरे, पाजी !"—शेलकश ने हाथ हिलाकर कहा ।—"क्या मेरे स्नेह में पड़ गया या और कुछ ? तू तो लड़कियों से बढ़ गया ।

रा वियोग असह्य हो गया क्या ? क्यों, छोकड़े ! बोल, क्या बात ? नहीं तो मैं चला।"

"जा रहे हो ?"—गैब्रिलो ने चीख मारी।

तट की सैकत भूमि चीख से चकपका उठी। तरंगों से आप्लावित तट काँप उठा। शेलकश भी सिहर गया। सहसा गैब्रिलो झुककर उसके पैरों पर गिर पड़ा और उन्हें बाँहों में भरकर खींचने लगा। शेलकश लड़खड़ाकर धम्म से गिर पड़ा। वह दाँत पीसने लगा, बाँहें पसारकर मुट्ठी बाँध ली। पर गैब्रिलो के विनयपूर्ण वचनों ने उसे आघात करने से रोक दिया।

"मित्र, वे रुपये मुझे दे दो! ईश्वर के नाम पर! तुम क्या करोगे ? एक ही रात में इतना कमा सकते हो। मुझे तो सालभर लगेगा। दे दो, मैं तुम्हारे लिये ईश्वर से प्रार्थना करूँगा—कई मंदिरों में—तुम्हारी मुक्ति के लिये। तुम इसे उड़ा डालोगे, मैं जमा रखूँगा। मुझे दे दो। इसमें तुम्हारा लगा ही क्या है ? बस, एक रात में धनी हो सकते हो, दया करो! तुम स्वच्छंद हो, अपना मार्ग निर्धारित नहीं कर सकते! और मैं! ओह, मुझे दे डालो।"

शेलकश बालू पर बैठा था—आश्चर्य और रोष से भरा हुआ। वह दोनों हाथों की टेक देकर चुपचाप बैठा था। उसकी आँखें युवक पर गड़ी थीं। युवक उसके घुटनों पर सिसकते हुए विनय कर रहा था। अंत में वह उठ खड़ा हुआ। जेब में हाथ ... और उसके ऊपर बिखेर दिए।

"मैंने छुआ भी नहीं, भाई ! मुझे उनकी आवश्यकता नहीं, वे भाग्यहीनता के लक्षण है !"

शेलकश ने जेब में हाथ डालकर नोटों का बंडल बाहर निकाला। उसने एक सतरंगा नोट जेब में रख लिया, शेष गैव्रिलो को देने लगा।

"इन्हें लो और जाओ !"

"मैं न लूँगा, भाई ! मैं नहीं ले सकता ! मुझे क्षमा करो !"

"कहता हूँ—ले लो !"—शेलकश गर्जा। उसका मुख अंगारे की तरह लाल हो गया।

"मुझे क्षमा कर दो तो ले लूँ !"—गैव्रिलो ने भयभीत होकर कहा। वह भीगी हुई बालू में शेलकश के चरणों पर गिर पड़ा।

"ढोंगी, तू इन्हें लेगा, नीच !"—शेलकश ने दृढ़तापूर्वक कहा। उसने बाल पकड़कर गैव्रिलो का सिर ऊपर किया और चेहरे पर नोट झोंक दिए।

"ले-ले, ले-ले ! तू ने व्यर्थ में काम नहीं किया है। ले, डर मत। एक आदमी को अधमरा कर देने के लिये लज्जित न हो। मेरे ऐसे व्यक्तियों के लिये कोई जाँच करने न आवेगा। लोगों को पता चलेगा तो तुझे सराहेंगे। तेरी करनी कोई न जानेगा। तुझे तो इसके लिये इनाम मिलना चाहिए। अब उठ !"

गैव्रिलो ने देखा कि शेलकश हँस रहा है। उसके हृदय को चैन मिला। उसने नोट मुट्ठी में कस लिए।

"भाई! मुझे क्षमा करोगे? नहीं करोगे? क्यों?"—उसने आँसू टपकाते हुए पूछा।

"मेरे भाई!"—शेलकश ने नकल करते हुए कहा। वह पैरों के बल उठ खड़ा हुआ, उसे चक्कर आने लगा—"किसलिये? किस बात की क्षमा? कोई बात भी हो? आज तुमने मेरे लिये किया, कल मैं तुम्हारे लिये करूँगा।"

"हाय, भैया, भैया!"—गैब्रिलो ने सिर हिलाते हुए दुःख से उसास ली। उसने अपना सिर हिलाया।

शेलकश उसके संमुख खड़ा था। वह विचित्र मुसकान छोड़ रहा था। उसके सिर की पट्टी लाल होती जा रही थी। मानों सिर पर टर्की टोपी रखी हो।

जल धारा बाँधकर गिर रहा था। समुद्र सूनी ध्वनि से गर्ज रहा था। लहरें तट पर टक्कर मार रही थीं। उनके थपेड़े प्रबल और वेगपूर्ण थे।

"अच्छा, नमस्कार!"—शेलकश ने शांतिपूर्वक व्यंग्य से कहा। उसे चक्कर आने लगा, पैर काँपने लगे। उसने सिर को थाम लिया, मानों डर रहा हो कि कहीं यह खंड-खंड न हो जाय।

"क्षमा करो, भाई!"—गैब्रिलो ने एक बार फिर क्षमा माँगी।

"एवमस्तु!"—शेलकश ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया। वह अपनी राह लगा।

वह लड़खड़ाता चला जा रहा था—बाँयें हाथ में सिर थामे और दाहिने से मूँछें बटता हुआ।